Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता के तीन वर

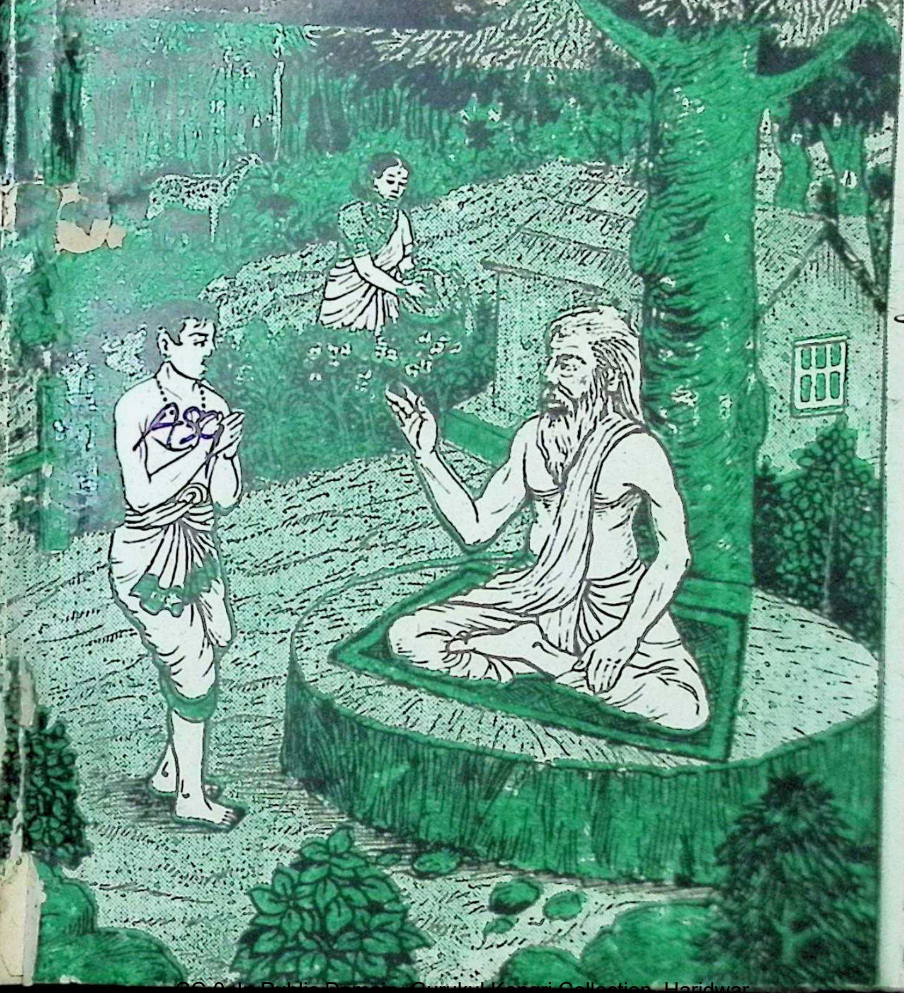

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

'असतो मा सद् गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतं गमय'

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का बत्तीसवाँ पुष्प'

नचिकेता के तीन वर

लेखक—प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार, (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर

आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३) द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति (अजमेर)

वेदरत्न (मानद उपाधि १९८४ द्वारा—विश्ववेद परिषद्)

पता—रामप्रसाद वेदालंकार

वेद-सदन, आर्यनगर, ज्वालापुर फोन—३१४

जि० सहारनपुर, (उ० प्र०) पिन—२४९४०७

प्रकाशक—श्रीमती एवं श्री नरेन्द्रनाथ जुनेजा, बम्बई,

सम्वत् २०४१) दयानन्दाब्द—१६० (जनवरी १९८५

प्रथम सं० ४०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

क्र० सं०		पृ० सं०
१	प्रकाशक का परिचय	३
२	भूमिका	२१
३	समर्पण	२६
४	नचिकेता के तीन वर	२७
५	प्रथम वर	४१
६	दूसरा वर	४३
७	तीसरा वर	५३

मूल्य–"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनना ही इस का मूल्य है।

जो महानुभाव इस सरल सुबोध वैदिक साहित्य को उपयोगी समझकर मंगवाना चाहें वा इस में अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहें वे कृपया लेखक के पते पर पत्र व्यवहार करें।

नोट—न्यून से न्यून ५० रु० तक का दान तथा मासिक दान किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित होगा। शेष फुटकर रूप में।

* पुस्तक विक्रेता आदि को "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के लिये ३ रु० ४० पैसे मात्र दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक का परिचय

भाई श्री नरेन्द्र नाथ जी जुनेजा का जन्म १५ अप्रैल सन् १९३० ग्राम कालेकी जिला गुजरांवाला (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। आप की पूज्या माता जी क नाम श्रीमती माता सत्यवती जी और पूज्य पिता जी का नाम श्री गुरांदित्ता मल जी था।

आप के पूज्य माता, पिता जी यों तो कुछ विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु फिर भी वे गुड़े हुए बहुत थे। पिता जी ने अनपढ़ रहकर जगत् में पग-पग पर जिन कठिनाईयों का अनुभव किया था उन्हीं के आधार पर वे सदा अपनी सन्तानों को कहा करते थे कि–"मेरे प्यारे बच्चो! मैंने तुम्हें अनपढ़ नहीं रहने देना, चाहे मुझे तुम्हें पढ़ाने में कितना भी तप क्यों न करना पड़े, कितनी भी कठिनाईयों का सामना क्यों न करना पड़े।" यों घर में जमीदारी का काम था। प्रभु की हर प्रकार से कृपा थी। स्वभाव से आप के माता-पिता दोनों ही बड़े सीधे-साधे और सरल थे। यों तो उन्होंने आर्यसमाज में कोई विशेष कार्य नहीं किया पर फिर भी समान रूप से उन्हें सनातन धर्म और वैदिक धर्म में पर्याप्त श्रद्धा थी। समय समय पर वे धर्म के कार्यों में, वह चाहे सनातन धर्म का हो वा गुरुद्वारे आदि का हो, वे खूब दान आदि करते थे। वे बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा से उन सब के उपदेशों को सुनते थे और अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन उपदेशों में से जो ग्रहण कर सकते थे, वह अवश्य ग्रहण करते थे। पूज्या माता जी बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अपने घर-परिवार पर आए हुए अभ्यागतों की सेवा-शुश्रूषा करती थी। यह सब देखते हुए कभी आप की सन्तान को आप पर दया आती थी और वह कुछ कहती थी तो इस पर माता जी उन्हें बड़े प्यार से समझाती थी और कहती थी कि–"मेरे प्यारे बच्चो ! वह घर बड़ा ही भाग्यशाली होता है जहां खूब अतिथि आते है" अपनी पूज्य माता जी की इस बात का उस समय अपने इस प्रिय पुत्र श्री नरेन्द्र नाथ जी पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज भी अनेकों बार जब कभी परिवार में ऐसी स्थिति आ जाती है और पूज्या बहिन कमल जी जब कुछ घबरा सी जाती हैं, तो उस समय श्री भाई नन्रेद्र नाथ जी अपनी अर्धाङ्गिगी श्रीमती कमल जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, "देवी जी ! ऐसे अवसरों पर जब कि अभ्यागत घर में खूब आते थे तो मेरी पूज्या मां जी फूली नहीं समाती थीं और जी-जान से उनकी आवभगत में लग ज़ाती थीं। प्रायः वे कहा करती थीं कि-'वह घर बड़ा भाग्यशाली होता है जहां कि खूब महिमान आते हैं–अतिथि आते हैं।" यह सब आदरणीय भाई नरेन्द्र नाथ जी से पूज्या बहिन जी जब सुनती हैं तो फिर इस विषय में उनमें भी एक नया उत्साह उत्पन्न हो जाता है। पूज्य पिता जी के निम्न विचार भी इनके हृदय में सदा गूंजते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं जबकि वे अपने इस पुत्र को कहा करते थे कि–"बेटा ! तू मुझे शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नत होकर दिखा······।"

श्री गुरांदित्ता मल जी की आठ सन्तान हुई जिनके क्रमशः नाम ये हैं—१. श्री चरणदास जी, २. श्री सुन्दर दास जी, ३. श्री कुन्दनलाल जी, ४. श्री नारायण दास जी, ५. श्रीमती करतार देवी जी, ६. श्री सरदारी लाल जी, ७. श्री रामप्रकाश जी, ८. श्री नरेन्द्र नाथ जी।

इन आठों सन्तानों में से प्रथम श्री चरणदास जी जुनेजा आर्यसमाज उज्जैन के प्रधान हैं, दूसरे श्री सुन्दरदास जी मुहु (इन्दौर) में जमीदारे का कार्य करते हैं। तृतीय श्री कुन्दनलाल जी बम्बई में रहते हैं और अपनी धार्मिक रुचि के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों में पर्याप्त रुचि लेते हैं। चतुर्थ श्री नारायण दास जी जो बम्बई में ही होजरी का कार्य करते हैं। आज दुर्भाग्यवश वे इस कुल में नहीं रहे, प्रभु को प्यारे हो गए, पर वे थे आर्यसमाज के बहुत बड़े दीवाने। उन्होंने आर्यसमाज का इतना कार्य किया और इतनी श्रद्धा और प्रेम से किया कि इनकी जीवन गाथा अपने ढंग से स्वतन्त्र रूप में ही लिखने की आवश्यकता है। सामाजिक क्षेत्र में तो जो कुछ इन्होंने किया उस को तो समाज कभी भुला ही नहीं सकता। वे बड़े उदार और बड़े ही साहसी थे। वे बड़े ही त्यागभाव से सदा आर्यसमाज के कार्यों को करते रहे। पारिवारिक दृष्टि से भी वे इतने महान् थे कि सारा परिवार भी उन्हें कभी भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सकता। आदरणीय बहिन कमल जी का कहना है कि सारे परिवार को एकसूत्र में पिरोए रखने में उन का अपने ढंग का अनूठा योगदान है। स्वयं का जीवन उनका बड़ा ही तपोमय रहा है। आर्यसमाज के नियमों को आचरण में लाने का उन का सदा ही एक अपने ढंग का प्रयास रहा है। उनके सभी भाई उन के अनूठे प्यार और उपकार को गाते-गाते नहीं थकते। उन की धर्म सम्बन्धी प्रवृत्तियों में प्रगाढ़ श्रद्धा, विश्वास और प्रेम को देखकर सभी पारिवारिक जन उन के सम्मुख श्रद्धा से झुक जाते थे। दान, धर्म आदि के सम्बन्ध में वे जब कभी भी अपने भाईयों आदि के सम्मुख खड़े हुए तो फिर श्रद्धा से सब भाईयों ने उनकी झोली ही भर दी। अपने कुल में किसी की भी गृहस्थ रूपी गाड़ी जहां कहीं अटक जाती थी तो झट वे सहारा देकर उस गाड़ी का पईय्या दलदल से बाहर निकाल कर उस को गतिमान् कर देते थे। उनके जीवन एवं कार्यों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे केवल अपने घर परिवार में ही नहीं, अपने कुल में ही नहीं, वरन् सामाजिक क्षेत्र में भी एक अग्रणी नेता थे, इन सब की नौकाओं के सफल खिवैय्या थे। उन को देख एवं सुन कर चाहे कोई सामाजिक व्यक्ति हों वा पारिवारिक सदस्य हों, सब की धर्म दान आदि में रुचि बढ़ जाती थी। श्री भाई नरेन्द्र नाथ जी जिनका कि लगभग हमउम्र भतीजा श्री सुरेन्द्र जी है, जिस को कि यह अपने भाई के पुत्र में ही सदा देखते आए हैं, इन्हीं श्री भाई नारायण दास जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[

की ही प्रेरणा से भाई श्री नरेन्द्र नाथ जी से मिलकर होजरी की फैक्ट्री आरम्भ की। इन दोनों का परस्पर कितना स्नेह है– प्यार है, कितनी लग्न से, कितनी मेहनत से ये दोनों परस्पर मिलजुल कर कार्य करते हैं, यह एक बड़ी देखने वाली बात है। ये दोनों ही यह समझते हैं कि–"जो कुछ भी आज हम हैं, यह सब कुछ स्वर्गीय पूज्य श्री नारायण दास जी के आशीर्वाद, सत्प्रेरणा और निश्छल निःस्वार्थ प्यार का परिणाम है। आज यद्यपि आदरणीय भाई नारायण दास जी नहीं हैं पर फिर भी वे अपने इन भाईयों एवं उनके पारिवारिक सदस्यों के हृदयों में सदा समाए रहते हैं, अपनी मधुर स्मृतियों से इन के लिये वे प्ररणा के स्रोत बने रहते हैं।

श्री गुरांदित्ता मल जी की पांचवी सन्तान बेटी के रूप में श्रीमती करतार देवी जी उज्जैन में श्री जगन्नाथ जी पाहवा की अर्धाङ्गिनी के रूप में बड़े सुख-सौभाग्य से अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। श्री सरदारीलाल जी अपने पिता की छटी सन्तान है जो रिटायर्ड ब्रिगेडियर हैं, जो आजकल सफदरगंज इन्क्लेव में रहते हैं। अपनी इस आयु में वे आर्यसमाज का बड़ी लग्न से कार्य करते रहते हैं। परिवार को विद्या-सुशिक्षा के द्वारा सुयोग्य बनाने में और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ करने में तथा उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों द्वारा ऊंचा उठाने एवं आगे बढ़ाने में इनका अपने ही ढंग का अनूठा योगदान है। यह वह भाई है जिस ने मिलिट्री में होने के कारण अपने सारे परिवार को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित पाकिस्तान से भारत पहुँचाया। फिर जब वे इस कार्य में लगे तो फिर अपने ही नहीं वरन् अन्य अनेकों परिवारों की नैया के खिवैय्या बन कर उन को इन्होंने सही सलामत भारत पहुँचाया। इन के इस प्यार और उपकार के प्रति सारा परिवार हृदय से कृतज्ञता अनुभव करता हुआ आज भी प्यार और हित का भावना से ओत-प्रोत होकर जब ये अपने भाई-बन्धुओं को कोई आदेश-उपदेश देते हैं तो सभी बड़ी श्रद्धा से उस को सुनते हैं और तदनुकूल आचरण करने का हार्दिक प्रयास करते हैं।

श्री रामप्रकाश जी आजकल इन्दोर में रहकर प्रभु की अपार कृपा से मध्यम ढंग से अपना सुख-सौभाग्यमय जीवन बिता रहे हैं।

आठवीं सन्तान है अपनी पूज्य माता और अपने पूज्य पिता की श्री भाई नरेन्द्र नाथ जी। आप का जन्म ग्राम कालेकी, जिला गुजरांवाला (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। अपने पूज्य पिता जी की भावनाओं के अनुरूप ही आपने जी लगा कर खूब पढ़ा। इन्टर करने के उपरान्त आप ने डिपलोमा कोर्स किया और फिर पुरुषार्थ में जुट गये। मनुष्य कई बार सोचता कुछ है और प्रभु को कुछ और ही स्वीकार होता है। ऐसा ही आप के साथ भी हुआ। आप को अपने कार्य की दिशा बदलनी पड़ी। उस विशेष डिप्लोमा कोर्स करने के उपरान्त भी अपने भतीजे श्री सुरेन्द्र नाथ जी के सुझाव एवं पूज्य भाई श्री नारायणदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के आदेशानुसार इन्होंने श्री सुरेन्द्र नाथ जी के साथ मिल कर कार्य आरम्भ कर दिया। ये दोनों परस्पर इतने स्नेह से रहते और कार्य करते हैं कि ऐसा लगता है कि जैसे एक ही मां के जाए दोनों सगे भाई हों। दोनों का प्रगाढ़ स्नेह, दोनों का एकजुट होकर महनत से कार्य करना इन के कार्य को चार चांद लगाए हुए है। इसी का परिणाम है कि इन का कार्य सतत् बढ़ रहा है, फैक्ट्रियां भी बढ़ रही हैं। इन के परस्पर स्नेह सद्भाव और कार्य करने की लगन को देख, सुन वा जानकर हर एक को बड़ी प्रेरणा मिलती है। प्रभु ऐसी स्नेह, सहयोग और सहानुभूति की भावना सभी को दे।

एक बड़े सौभाग्य की बात यह है कि भाई श्री नरेन्द्र नाथ जी का विवाह २१ वर्ष की आयु में २६ अगस्त १९५७ में एक ऐसे देवता के परिवार में हुआ जिस का नाम श्री अमर नाथ जी पाहवा है। ये भी वर्तमान पाकिस्तान में पिण्डी भट्टियां जि० गुजराँवाला के रहने वाले थे। ये एक अत्यन्त धार्मिक सज्जन एवं बड़े श्रद्धालु प्रभु भक्त हैं। अपनी आयु के तृतीय चरण में जैसी इन के रहन-सहन, खान-पान, बात-चीत, स्वाध्याय-सत्संग, ध्यान-भजन आदि की वृत्तियां-प्रवृत्तियां हैं जो सोम्य-सरल इन का स्वभाव है, जो इन के उत्तम आचार और व्यवहार आदि हैं, उन सब को देखकर सहज ही प्राचीन समय के एक सच्चे-सुच्चे वानप्रस्थ महानुभाव का दृश्य सम्मुख उपस्थित होता है। कभी समय था कि इस परिवार में एक मा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ होता था, पर सौभाग्य से आज दोनों समय इस परिवार में यज्ञ होता है। बड़े-बड़े संन्यासी विद्वान् तपस्वी साधक महानुभावों का इन के घर में प्राय: आगमन होता रहता है, जिसका प्रभाव उन की सन्तानों पर भी बड़ा उत्तम पड़ता रहता है। इसी घर की बेटी बड़े लाड़ और प्यार में पली हुई सरलता, भावुकता तथा धर्म की साक्षात् मूर्ति बहिन कमल जी का विवाह श्री भाई नरेन्द्रनाथ जी के साथ २६-८-५७ को हुआ। बड़े ही सौभाग्य की बात थी कि इस देवी का आप के घर में पदार्पण हुआ। मां-बाप ने, माता-पिता ने, जननी-जनक ने जो घुट्टी आप को पिलाई थी, जो उत्तम गुण, कर्म, और स्वभाव आप में भरे थे, वे पतिकुल में पदार्पण करने पर पतिकुल का शृङ्गार बन गए। इस पूज्य बहिन जी को अपनी प्यारी मां का एक दिव्य आदेश था—एक दिव्य उपदेश था, वह यह कि—"बेटी ! सुसराल में जाकर उस मां को [अर्थात् अपनी सास को] ही तू अपनी सगी मां समझना, अपनी स्थिर मां समझना, हमें तो तू अस्थिर मां-बाप समझना। बेटी ! ऐसे ही एक बार एक मां ने अपनी बेटी को घर से बिदा करते हुए यह उपदेश दिया था जो कि उसने अपने पल्ले बान्ध लिया था। वह बेटी जब एक बहु बनकर सुसराल गई तो वह वहां कुछ समय बाद रुग्ण हो गई। रुग्ण होने पर अत्यन्त कष्टमयी अवस्था में सहसा उस के मुख के 'हाय मां ! हाय मां !'—ऐसे शब्द निकल पड़े। इस पर उस बहु की सास ने अपने बेटे को बुलाया, और कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेटा ! बहू ने आज अपनी माँ को अपनी इस पीड़ा में बहुत स्मरण किया, अतः तू आज ही जा, और उसको ले आ।"

बेटा एकाध जोड़ा कपड़े लेकर अपनी सास को लाने के लिये तैयार हो गया। जाते समय पत्नी को कुछ होश आ गया था, अतः जाते हुए जब वह अपनी पत्नी से मिला और कहा कि-"मैं माताजी [अर्थात् आपकी माता जी] को लाने जा रहा हूँ।" पत्नी ने पूछा—"क्यों और किसलिये?" इस पर पति बोला कि-"देवी ! थोड़ी देर पहले जब तू अत्यन्त कष्ट होने के कारण कुछ अचेत सी थी तो तू ने 'हाय मां ! हाय मां !' कह-कह अपनी मां को बहुत याद किया था, इसलिये मैं उन को लाने जा रहा हूं। जब मैं माता जी को ले आऊंगा तो उस से आप को बड़ी सान्त्वना और सुख मिलेगा........।" इस पर पत्नी बोली—"पतिदेव ! आप मत जाओ।" यह कहने पर झट उस की सास आ गई और वह बोली-"बहू ! जाने दो न ! जब यह तुम्हारी माँ को ले आयेगा तो इससे तुम्हें बहुत ढाड़स मिलेगा और तू बहुत जल्दी अच्छी हो जायेगी। तुम्हें याद नहीं कि अपनी पीड़ित अवस्था में आज तुम ने उन्हें कितना याद किया हैं......।" यह सुनकर बहू झट सास की ओर अभिमुख होकर हृदय की टीस के साथ बोली "माँ जी ! अब मेरी असली माँ वह नहीं, यह है-अब मेरी स्थायी मां वह नहीं, यह ही हैं। अतः अत्यन्त पीड़ित अचेत अवस्था में भी अगर मैं ने "हाय मां ! हाय मां !" पुकारा है, और मां को याद किया है, तो उस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय भी अब वह मां नहीं, वरन् मेरी यही मां है।" उस झुकी हुई सास के हृदय की ओर एक दम हाथ बढ़ाती हुई वह बहू बोली—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह माँ नहीं वरन् यही माँ जब मुझे हृदय से लगायेगी और सहलायेगी तो मुझे बहुत बड़ी सान्त्वना मिलेगी, मेरा रोग-शोक भी तव झट विदा हो जायेगा……।" यह सब सुनते ही सास का हृदय भर आया और उस में एक प्यार का सागर सा उमड़ आया। झट उस ने वहीं पर ही जैसे-तैसे उस को हृदय से लगा लिया और उस को हाथ से सहलाती हुई बोली कि—"हे प्रभुवर ! आज मुझे बहू के रूप में सच-मुच असली बेटी मिल गई, आज मुझे बहू के रूप में स्थिर बेटी मिल गई। जो अस्थिर बेटियाँ थीं वे तो सब विदा ही हो गयीं……।"

इस के उपरान्त उस सास ने अपनी उस बहू को ऐसा अनूठा प्यार दिया कि वैसा कभी उस से अपनी सगी बेटियों ने भी नहीं पाया होगा।" सो बेटी ! तू भी पतिकुल में—ससुराल में जाकर ऐसे ही अपनी सास को सगी और स्थिर माँ समझना, अपने ससुर को सगा और स्थिर पिता समझना, फिर देखना कि तुझे क्या सुख मिलता है ?"

माँ के उपर्युक्त सदुपदेशों को आदरणीय इस बहिन जी ने अपनी अन्तःकरण रूपी झोली में या अपने पल्ले में जितनी मजबूती से बान्धे रखा उतना इस ने कभी अपने माँ-बाप के प्रदान किये हुए वस्त्र-आभूषणों को भी नहीं बान्धा। यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण है कि पतिकुल में बहिन जी का अपने ही ढंग का एक निराला जीवन है और निराली ही उस की उपलब्धियाँ हैं ।

यों तो विवाह के उपरान्त भाई नरेन्द्र नाथ जी अपने व्यापार में कुछ इतने व्यस्त और मस्त से रहे कि एक नारी को अपने पति से स्नेह-सम्मान आदि की जितनी अपेक्षा होती है वह भी सम्भवत: वह न कर पाए हों। फिर भी मैं समझता हूँ वा जैसा कि मुझे ज्ञात हुआ है कि—पूज्य बहिन जी ने इस घर को जो भी, जैसा भी बनाना चाहा, उन्होंने सदा उनकी ऊंची भावनाओं पर फूल ही चढ़ाए हैं। यदि आदरणीय बहिन जी ने यह चाहा कि "मैं इस घर को निरामिश भोजी बनाना चाहती हूँ"—तो भाई साहब ने झट उनकी भावनाओं का सहज ही स्वागत किया। उन के हार्दिक उत्तम संकल्पों का ही तो परिणाम है कि आज आप का लाडला प्रिय बेटा 'मनोज' इन वस्तुओं का सेवन तो दूर रहा वह तो सामन्य केक पैस्ट्री आदि के सेवन से भी सदा बचता है, क्योंकि उस पर भी प्राय: अण्डे आदि का लेप रहता है । इतना ही नहीं आदरणीय बहिन जी के जीवन में पीछे कुछ इस प्रकार की कई घटनाएं जब घटीं तो उन का मन कुछ उदास-परेशान सा रहने लगा। बहिन जी ने हरिद्वार, ऋषिकेश जाना चाहा। भाई साहब ने उन्हें भेज दिया। वहां से कुछ ही दिनों में वापिस आने पर भी जब बेटे मनोज ने देखा कि मां कुछ उदास सी ही रहती है तो उस से नहीं रहा गया और उस ने एक दिन यह पूछ ही लिया कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माँ जी ! लोग तो हरिद्वार ऋषिकेश जाते हैं तो वहाँ से हंसी-खुशी आते हैं पर मैं देखता हूँ कि आप वहाँ से आने के उपरान्त भी सदा कुछ खोई-खोई हुई सी–कुछ उदास–परेशान हुई सी ही दिखाई देती हैं, यह क्या बात है ?" इस पर माँ बोली—"बेटा ! मैं जहाँ व्यास आश्रम आदि गई थी वहाँ सदा सन्ध्या, हवन, भजन, जप, तप, स्वाध्याय आदि सब होते हैं और हम यहाँ रोज खा-पीकर सो जाते हैं और प्रातः उठकर फिर खा-पीकर अपने सासांरिक काम-धन्धों में लग जाते हैं। इस प्रकार खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि के अतिरिक्त हम कुछ और कर ही नहीं पाते। बेटा ! मैं आजकल इस सब सोचने विचारने में ही लगी रहती हूँ, तभी तुम को ऐसा लगता है, वैसे और कुछ विशेष बात नहीं है।"

बेटे से माँ का ऐसा खोया-खोया सा रहना सहा नहीं गया, इसलिये वह बोला कि—"माँ जी ! क्या अपने घर में हम ये सब सन्ध्या हवन-भजन स्वाध्याय आदि नहीं कर सकते ?" इस पर माँ बोली—"बेटा कर तो जरूर सकते हैं। पर आप सब का सहयोग हो तो तब न ! पहले तो वैसे ही देर से उठना हो, फिर तुम को अपने कॉलेज की और उन को अपनी फैक्ट्री की धुन हो, तो फिर यह सब कैसे होगा ?" बेटे ने कहा—"माँ जी, हम करेंगे।" २९ अप्रेल सन् ८१ को सम्भवतः यह बात हुई। अगली प्रातः माँ ने बेटे को आकर ६ बजे जगा दिया और कहा—"माँ जी ! आओ, हम सब हवन-यज्ञ करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ बोली—"मेरे बेटे ! यह सब कैसे होगा ? क्योंकि सामान तो अभी हमने मंगवाया ही नहीं, चलो कल से ही सही।" इस पर बेटा बोला—"माँ जी ! मैं ने सारा सामान तैयार कर दिया है, आप झट तैयार हो जाओ, हम आज ही से हवन-यज्ञ करेंगे।" माँ ने जब जाकर यह देखा कि आसन बिछे हुए हैं, और सब सामान यथोचित स्थान पर लगा हुआ है, तो उस की आत्मा बड़ी प्रसन्न हुई और उस के हृदय में तब अपने लाडले बेटे के लिये प्यार और आशीर्वाद उमड़ने लगा। पूज्य बहिन जी का यह कहना है कि "उसी दिन से फिर प्रभु कृपा से हमारे घर में हवन-यज्ञ आदि चल पड़ा।"

सन्तान के निर्माण के विषय में पग-पग पर आदरणीय भाई नरेन्द्र नाथ जी ने पूज्य बहिन जी की भावनाओं का स्वागत किया। प्रभु कृपा से आप के दो बच्चे हैं, एक बेटी जिस का कि नाम 'बाला' है। उस का विवाह दिल्ली में एक आर्य परिवार में प्रिय सतीश कुमार के साथ हुआ। ईशानुकम्पा से वह अपने घर-परिवार में सब प्रकार से खुश है। दूसरी सन्तान है प्रिय 'मनोज' भगवान् की दया से इस के भी गुण कर्म स्वभाव बहुत अच्छे और अपने पूज्य माता-पिता के अनुरूप ही हैं। वह अपने माता-पिता के प्रति बहुत श्रद्धा और सम्मान की भावना रखता है। उन के आदेश और उपदेशों को भी वह बड़ी श्रद्धा में सुनता है और यह सोच कर उन पर यथाशक्ति आचरण भी करता है कि इन से मेरा हित ही होगा–भला ही होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो श्रद्धा और सम्मान की भावना इस बेटे की अपने पूज्य माता-पिता के प्रति है, भगवान् करे वह इस युग के बालकों में भी अवश्य हो। यों श्री नरेन्द्रनाथ जी के जो भतीजे हैं, जिनके साथ कि ये काम करते हैं, जिन को कि ये सदा अपने छोटे भाई के समान समझते हैं, उनके भी दो बच्चे हैं। एक बेटी चीना और दूसरा बेटा विवेक। उन को जब मैं देखता हूँ तो यह पता नहीं लग पाता कि ये इस घर के बच्चे हैं या उस घर के। यह सब इन के पूज्य माता-पिताओं के हृदयों की एकता एवं परस्पर प्रगाढ़ प्रेम का ही परिणाम है कि बच्चों में भी परस्पर इतना सौहार्द और प्रेम है।

सौभाग्य से २६ अगस्त सन् ८२ आप दोनों [अर्थात् पूज्य बहिन जी एवं आदरणीय भाई नरेन्द्रनाथ जी] के विवाह की २५ वीं वर्षगांठ थी। परस्पर विचार हुआ कि क्या किया जाय। बम्बई जैसी विलासिता की नगरी में तो सहज ही यह सूझता है कि नाच-रंग-तमाशे आदि कर के कुछ विशेष खा-पी और बांट दिया जाए और इसी में ही अपनी सिल्वर जुबली की—अपने सुख-सौभाग्य की सफलता की इति—श्री समझ ली जाए। पर इस विषय में आदरणीय भाई साहब तो कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि—"क्या किया जाए ?" यों तो धर्म एवं श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति उन की पूजनीया माता जी के उत्तम संस्कारों का प्रभाव भी उन पर था, और अपने स्वर्गीय पूज्य भाई श्री नारायण दास जी प्रधान आर्यसमाज सान्ताक्रुज़ और दिल्ली में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करने वाले धर्म परायण भाई श्री सरदारीलाल ब्रिगेडियर के धार्मिक विचारों का भी उनके हृदय पर प्रभाव था। परन्तु समय की बात है कि वे भाव उस समय प्रसुप्तरूप में थे। परन्तु पूज्य कमल बहिन जी जो इस विषय में प्रायः कुछ सजग रहती हैं, बोलीं–"पतिदेव! ऐसी पार्टियोंमें तो मेरी कुछ विशेष रुचि है नहीं, जिन में कि बैठ-उठकर कुछ हंस-खेल लिया वा कुछ सब को खला-पिला-लिया जाए इत्यादि।" मैं तो सोचती हूँ कि यह हमारे लिये एक आत्मनिरीक्षण का अवसर है। हम यदि इस समय किसी ज्ञानी-विद्वान् का आश्रय लेकर घर पर दो चार दिन का कुछ यज्ञ-उपदेश आदि रख लें, तो दाम्पत्य जीवन में उस से जहाँ हमें बीते हुए जीवन पर आत्मनिरीक्षण का सुअवसर मिलेगा वहां आनेवाले जीवन के लिये भी हमें एक नई दिशा मिलेगी। और पूर्णाहुति के उपरान्त स्नेह-सहानुभूति रखने वालों के साथ मिल बैठ कर खुशी-खुशी सहभोज भी हो ही जायेगा। इस से जहां हमें कुछ विशेष लाभ होगा वहां अन्य-अनेकों को भी अपने दाम्पत्य जीवन की वर्षगांठ आदि मनाने की एक नई सूझ मिल सकती है। और वे तब वर्तमान प्रवाह में इन काकटेल पार्टियों के आयोजन आदि करने से कुछ बच कर कुछ और भी सोच समझ कर जीवन में कुछ आगे बढ़ सकते हैं–कुछ ऊपर उठ सकते हैं। मैं सोचती हूं कि इस प्रकार के आयोजन से हमारी आने वाली पीढ़ी को इस से कुछ अच्छी ही प्रेरणा मिलेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरणीय बहिन जी के इस सुझाव को सुनकर श्री भाई नरेन्द्र नाथ जी की समस्या सहज ही सुलझ गई और उन्होंने सोचा कि—"वास्तव में ऐसा करना हमारे लिये बड़ा ही अच्छा रहेगा। क्योंकि एक तो हमारे जैसे धर्म परायण कुल के साथ अच्छा भी ऐसा लगता है और दूसरा यह सब करने से जहां हम सबको अपने जीवन को कुछ आगे बढ़ाने और ऊँचा उठाने में जहां दिशा मिलेगी, वहां इस आयोजन के माध्यम से अन्य सब बन्धु-बान्धवों एवं स्नेही महानुभावों को भी धर्म लाभ होगा।" अतः उन्होंने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकर कर लिया।

प्रसङ्ग की बात है कि इस शुभ अवसर पर मुझे आदरणीय बहिन जी एवं श्री कैप्टिन देवरत्न जी महा-मन्त्री आर्यसमाज सान्ताक्रुज ने स्मरण किया। अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी मैं बम्बई गया। मुझे इस कार्य के सम्पादन करने में जो प्रसन्नता हुई, मैं समझता हूँ कि मुझ से बढ़कर आदरणीय बहिन जी एवं भाई नरेन्द्र नाथ जी को हुई होगी। प्रभु से प्रार्थना है कि उनका आने वाला जीवन उनकी आशाओं से भी बढ़कर सुख शान्ति एवं आनन्दमय हो।

ऐसे परिवार से जहाँ सहज ही नानाविध उपकार के कार्य होते रहते हैं वहाँ अतिथि के रूप में भी अनेक महानुभाव एवं बड़े-बड़े महापुरुष आते रहते हैं। ऐसे समयों पर कार्याधिक्य के कारण कभी-कभी बहिन जी बड़ी थकान का अनुभव भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। तब विशेषकर जब कि कोई सेवक आदि सहयोगी भी नहीं होता। तो ऐसे समय पर बड़े प्यार से प्रसन्न मुद्रा में भाई नरेन्द्र नाथ जी सहज ही कह उठते हैं—"देवी ! मेरी पूज्य मां जी के ये शब्द सदा मेरे कानों में गूंजते रहते हैं कि—"बेटा ! वह घर बड़ा ही खुशकिस्मत होता है, बड़ा ही भाग्यशाली होता है, जहाँ अतिथि आते रहते हैं······।" अपने पति के इन शब्दों को एवं उनकी तथा उनकी पूज्य माता जी की उदारभावना को स्मरण कर पूज्य बहिन जी में फिर एक ऐसा उत्साह सा आ जाता है कि फिर जी जान से वह, वह सब कुछ कर डालती है। उस के परिणामस्वरूप जहाँ उनकी स्वयं की आत्मा तृप्ति का अनुभव करती है वहाँ उनकी सेवा-शुश्रूषा वा सेवा-सत्कार से अन्यों की आत्मा भी तृप्त होकर उन्हें हृदय से स्नेह एवं आशीर्वाद देती है।

आदरणीय बहिन जी के जीवन की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन को यदि किसी ने स्नेह दिया, प्यार दिया, ज्ञान दिया. आशीर्वाद दिया, तो उनके प्रति उनके कृतज्ञ हृदय में बड़ी ही निश्छल श्रद्धा भावना जगती है। यही कारण है कि आज पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी संसार में नहीं रहे तो भी उन के स्नेह, आशीर्वाद एवं सदुपदेशों से उपकृत हुई-हुई बहिन कमल जी का कहना यह है कि—"भाई साहब ! मैं चाहती हूँ कि मैं और तो कुछ कर नहीं सकती उन की पुण्य स्मृति में, हमारी ओर से एक आध्यात्मिक पुस्तक ही प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अध्यात्म प्रेमी महानुभावों के कर-कमलों तक पहुँचा दें तो हमें हार्दिक प्रसन्नता होगी" सो आदरणीय बहिन जी एवं भाई नरेन्द्र नाथ जी को स्वर्गीय महात्मा आनन्द स्वामी जी के प्रति कृतज्ञतामयी भावनाओं का ही परिणाम समझिये कि जो आज 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' का यह बतीसवाँ पुष्प "नचिकेता के तीन वर" नामक पुस्तक आप के कर कमलों में विराजमान है। यदि इस के स्वाध्याय से अध्यात्मप्रेमी, स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों को जीवन में कुछ आगे बढ़ने और ऊपर उठने में कोई सहयोग मिला तो लेखक एवं प्रकाशक अपनी लेखनी और धन को सार्थक समझेंगे।

विनीत—रामप्रसाद वेदालंकार, वेदरत्न
आचार्य एवं उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता के तीन वर–भूमिका

यह पुस्तक कठोपनिषद् के आधार पर सरल-सुबोध रूप में प्रायः कर के हिन्दी में ही इस उद्देश्य से लिखी गई है कि जिस से सामान्य जन भी इसको सहज रूप में हृदयङ्गम कर सकें। जहां संस्कृत के श्लोकों को आवश्यक एवं अत्यन्त प्रेरणा प्रद समझा गया वहाँ उन श्लोकों को उद्धृत कर उन का अन्वयार्थ भी दे दिया गया।

यह कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय कठशाखा के अन्तर्गत कठ ऋषि द्वारा प्रणयन की गई है। इस उपनिषद् का दूसरा प्रसिद्ध नाम "नाचिकेतोपाख्यान" भी है। यद्यपि यह कठशाखा आज कल उपलब्ध नहीं हो रही है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय इस कठशाखा का यह अंश 'कठोपनिषद्' [वा नाचिकेतोपाख्यान] पृथक् रूप से प्रकाशित हुई होगी। अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद होने से इस का पर्याप्त प्रचार एवं प्रसार रहा होगा, तभी तो यह अद्यावधि–आज तक उसी रूप में चली आ रही है। यह उपनिषद् चाहे आध्यात्मिक दृष्टि से देखी जाए, चाहे पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, गृहस्थ-अतिथि आदि के लौकिक व्यवहार की दृष्टि से देखी जाए, चाहे भाषा भाव और शिक्षा आदि की दृष्टि से देखी जाए, कहने का अभिप्राय यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि प्राय: सभी दृष्टियों से यह बहुत ही श्रेष्ठ एवं बड़ी ही मनोहारिणी है। इस को आवश्यक मन्त्रों, मन्त्रार्थों एवं धारा-वाही आर्यभाषा—हिन्दी भाषा में इसलिये प्रस्तुत किया गया है कि जिस से प्राय: सभी स्वाध्यायशील व्यक्ति इस का स्वाध्याय करके लाभ उठा सकें।

यह कठोपनिषद् प्रामाणिक एकादशोपनिषदों में से एक प्रसिद्ध उपनिषद् है। इस उपनिषद् के अनेकों भाषाओं में अनुबाद मिलते हैं। इतना ही नहीं, एक-एक भाषा में भी इस के अनेकों अनुवाद उपलब्ध होते हैं। इस से पता लगता है कि यह उपनिषद् कितनी लोकप्रिय है।

इस उपनिषद् में नचिकेता और यमाचार्य की एक सुन्दर आख्यायिका के द्वारा अध्यात्मप्रेमी महानुभावों को बड़े ही सुन्दर एवं रोचक ढंग से आत्म-परमात्म सम्बन्धी उपदेश दिया गया है। इस उपनिषद् में दो अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं। प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में २९, द्वितीय वल्ली में २५ और तृतीय वल्ली में १७ श्लोक हैं। द्वितीय अध्याय की प्रथम वल्ली में १५, द्वितीय वल्ली में १५ और तृतीय वल्ली में १८ श्लोक हैं। इस प्रकार कठोपनिषद् में कुल मिलाकर दो अध्याय, ६ वल्लियाँ और ११९ श्लोक हैं।

कई विद्वानों का यह कहना है कि यह 'कठोपनिषद्' वा 'नाचिकेतोपाख्यान' ऐतिहासिक उपाख्यान है जिस में कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता एक शिष्य है और यम एक आचार्य है। परन्तु इस उपनिषद् के गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने से यह बात सिद्ध नहीं होती। इसके गम्भीरतपूर्वक अध्ययन करने से तो यही ज्ञात होता है कि ये दोनों कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न होकर नचिकेता –'जीवात्मा' और यम–'मृत्यु' है। अध्यात्मविद्या के प्रचार एवं प्रसार के लिये ही इन दोनों की आलंकारिक संवादरूप यह कथा ही 'कठोपनिषद्' है। यह संवाद आज ही का हो ऐसी भी बात नहीं, इस के सम्बन्ध में तो (कठोपनिषद् १-३-१६) में ही कहा गया है कि—"नाचिकेतमुपाख्यानं सनातनम्" [अर्थात् यह नचिकेता–जीवात्मा विषयक अलङ्कार सनातन है। यम का अभिप्राय भी कोई आचार्य विशेष न होकर यह शरीर विनाशक 'मृत्यु' ही है। इसी उपनिषद् ने स्वयम् भी इसी यम को वैवस्वत [जो विवस्वान्–सूर्य से बना हुआ है। सूर्य से 'काल' बनता है, और यम वा मृत्यु को भी काल ही कहते हैं।] अन्तक [शरीर आदि का अन्त करने वाला] आदि मृत्यु के पर्यायवाची शब्दों से कहा है, तथा "मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्" (कठ० १-१-११) मृत्यु के मुख से छूटा हुआ' इस कथन में भी 'मृत्यु' शब्द किसी मानव-व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में नहीं किन्तु उस मारक मृत्यु के लिये ही हो सकता हैं। आगे चलकर "अयं लोक, नास्ति पर, इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे" (कठो० १-२-६)–'यह लोक है, पर लोक नहीं है, ऐसा मानने वाला बारम्बार मेरे वश में आता है।" इस कथन में भी यम मारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु ही है, कोई व्यक्ति विशेष नहीं। इस के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में इस कठोपनिषद् के कुछ श्लोकों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'नचिकेता' यहां जीवात्मा का अलंकार है।

संक्षेप में इस उपनिषद् की कथा निम्नलिखित है—

प्राचीन काल में वाजश्रवस नामक एक ऋषि हुए जिनका एक पुत्र था। जिसका नाम 'नचिकेता' था। वाजश्रवस ने सर्वमेध यज्ञ रचाया। उस यज्ञ में जो भी कुछ उसके पास था। वह सब का सब उसने ब्राह्मणों को प्रदान कर दिया। उसके प्रदान किये हुए धन-माल को एक-एक करके जब वे सब ब्राह्मण ले जा रहे थे तो इस सुन्दर दृश्य को देखकर उसके प्रिय पुत्र नचिकेता के हृदय में भी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने सोचा कि उसका पिता सब कुछ दे ही रहा है तो वह उसे भी—अर्थात् नचिकेता को भी किसी को देगा ही। अतः उसने अपने पिता से यह पूछा कि—"पिताजी! आप मुझे किसको दोगे?—आप मुझे किसको दोगे?" इस पर उसके पिता वाजश्रवस ने खिन्न होकर कहा कि—"तुझे मृत्यु को दूंगा—तुझे मौत के हवाले करूँगा।"[1]

१. लोक में भी जैसे अत्यन्त व्यस्त माता-पिता किसी बालक के पुनः पुनः किसी बात के पूछने पर खिन्न होकर प्रायः यह कह दिया करते हैं कि—"जा मर, परे हट मेरी आंखों के सामने से।" यद्यपि उनका अभिप्राय उस समय वही न हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता जो कि एक अत्यन्त सरल और निश्छल बालक था। उसने अपने पिता के वचनों को सुनकर सहज ही हृदयङ्गम कर लिया और वह यमाचार्य के पास चला गया। यम उस समय अपने गृह पर उपस्थित न था, कहीं बाहर गया हुआ था। घर आने पर जब उसने देखा कि एक ब्रह्मचारी तीन दिन से भूखा-प्यासा उसके द्वार पर पड़ा हुआ है, तो इससे उसको बड़ा दुःख हुआ। तब उसने इस ब्रह्मचारी का स्वागत किया और जल-पान आदि द्वारा उसको तृप्त किया। तब प्रायश्चित के रूप में उसने उसे तीन वर मांगने को कहा। नचिकेता ने दो वरों के अपनी इच्छानुरूप उपलब्ध हो जाने पर तृतीय वर में आत्म-विद्या का रहस्य पूछा। बड़ी कठोर परीक्षा लेने के उपरान्त ही कहीं यमाचार्य ने उसको यह तृतीय वर भी दे दिया। अर्थात् उसकी आत्म सम्बन्धी जिज्ञासा का भी समाधान कर दिया।

इस प्रश्न के उत्तर में आत्म-परमात्म-सम्बन्धी गूढ़ रहस्य को एक संवाद की रीति से जिस उत्तम शैली से समझाया गया है, वह वास्तव में बड़ी ही अनूठी है। साधना के पथ पर आगे बढ़ना चाहने वालों के लिये यह उपनिषद् बड़ी ही उपादेय है।

कर केवल इतना ही होता है कि इस समय मुझे तंग मत कर, एक ओर हो जा, ताकि मैं अपने आवश्यक कार्यों को कर सकूं। सो यहां भी वाजश्रवस का यही अभिप्राय था जिसे सरल अन्तःकरण वाले नचिकेता ने यथार्थ ही समझा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपनिषद् की देववाणी-संस्कृत में अत्यन्त रोचकता होने पर भी आवश्यक एवं स्मरणीय प्रेरणाप्रद श्लोकों और उनके अन्वयार्थ देकर इसको आर्य भाषा में ही लिखा गया है ताकि अध्यात्म प्रेमी स्वाध्याय शील सामान्य जनों को इस उपनिषद् का ज्ञान सहज उपलब्ध हो सके, यदि इसके स्वाध्याय से अध्यात्मप्रेमी महानुभावों को अपनी साधना के क्षेत्र में कुछ आगे बढ़ने और ऊपर उठने की प्रेरणा मिल सकी तो लेखक एवं प्रकाशक अपनी लेखनी एवं अर्थ को सार्थक समझेंगे।"

समर्पण

जिस प्राणप्रिय परमेश्वर की अपार अनुकम्पाऔर अपने पूज्य गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए उत्तम ज्ञानप्रसाद एवं आशीर्वाद से "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के इस बत्तीसवें पुष्प "नचिकेता के तीन वर" नामक पुस्तक को मैं आप स्वाध्यायशील महानुभावों के कर-कमलों तक पहुँचा सका हूं, उन्हीं के पावन चरणों मे मेरा यह अल्प-प्रयास समर्पित है।

विनीत–रामप्रसाद वेदालंकार-वेदरत्न
आचार्य एवं उपकुलपति
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता के तीन वर

[1]वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस उद्दालक नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि हुए जिस ने अपने कल्याण की कामना से सर्वमेध यज्ञ किया। उस ने उस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर दिया। अर्थात् उस ने दान में जहाँ अपनी अन्य वस्तुएं दान कर दीं, वहां गौएं भी दे दीं। इतना ही नहीं, उन्हों ने अपना जीवन भी [–अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ और मन-बुद्धि चित्त आदि को भी] समाज को समर्पित कर दिया। उस का एक प्रिय पुत्र था जिसका नाम [2]नचिकेता था।

यद्यपि वह बालक ही था, वह हृदय से अत्यन्त सरल और निश्छल ही था, आखिर वह नचिकेता ही तो था–उसे कुछ विशेष ज्ञान भी अभी नहीं था, तो भी जब उस ने अपने

१.वाजश्रवा:-वाजेन-अन्नेन श्रव:-कीर्तिर्यस्य स:। अन्न दान से जिसका चहुँ ओर यश फैला हो। अथवा वाजश्रवा का पुत्र वाजश्रवस।

२.नचिकेता:–"चिकेततिर्गतिकर्मा" निघं० २.१०। से नञ् पूर्वक छान्दस असुन् प्रत्यान्त प्रयोग है, जिसका कि अर्थ है शरीर में अविचल-अपरिणामी नचिकेता: है, अमर जीवात्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वमेध यज्ञ में अपना सर्वस्व अर्पण करते हुए देखा– अपना सर्वविध धन-वैभव प्रदान करते हुए देखा, यहाँ तक कि उसे अपना जीवन तक भी समर्पण करते हुए देखा, एवं ब्राह्मण आदियों का भी दक्षिणा और दान के रूप में नानाविध वस्तुएं और गौएं आदि ले जाते हुए देखा, और पिता के अन्त में जब जीवन दान करने पर चहुँ ओर के समाज को जब कृत-कृत्य होते हुए देखा, तो उस समय उस अत्यन्त सरल निश्छल सौम्य बालक नचिकेता के हृदय में भी बड़ी श्रद्धा सी उत्पन्न हुई। पर फिर उसने सोचा-उसने विचारा कि–"एक बात है, यह दक्षिणा देना और दान आदि करना तो बहुत ही उत्तम कर्म है, परन्तु जो गौएं कभी खूब पानी पीती थीं, अब वे पानी-वानी भी कुछ खास नहीं पी पातीं, जो गौएं कभी खूब घास-पात खाती थीं, अब वे घास-पात भी कुछ खास खा नहीं पातीं, जो कभी खूब बच्छी-बच्छड़े जनती थीं, अब वे सन्तान भी कुछ नहीं जन पातीं. जो कभी खूब दूध देती थीं, अब वे कुछ खास दूध भी नहीं दे पातीं, जो एक प्रकार से अब वृद्ध हो चुकी हैं, अशक्त हो चुकी हैं, इसलिये वे अब आगे नई पीढ़ियों को उत्पन्न भी नहीं कर सकतीं हैं, तो ऐसी गौएं अब दान में दिये जाने पर तो दान लेने वालों पर ये केवल एक भार स्वरूप ही रहेंगी। ऐसी गौओं के दान मे तो अब भला किसका कुछ हित हो सकेगा—भला किस का कुछ उपकार हो सकेगा ? ऐसी गौओं के दान करने से तो उलटा दाता ही आनन्द रहित–सुख-सौभाग्य रहित लोकों को ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करेगा । गौओं का अर्थ यहां यह भी किया जा सकता है कि नचिकेता ने विचार किया कि–"ठीक है पूज्य पिताजी ने अपना सर्वस्व दान कर दिया—अपना सब कुछ दान बांट दिया, और यहां तक कि अपना जीवन भी दान कर दिया। पर ऐसे जीवन दान से अब होगा भी क्या, जब कि मनुष्य वृद्ध हो जाए, जब कि उसकी जीवन सामर्थ्य प्राय: समाप्त सी हो जाए, जब कि उसकी गौओं-ज्ञानेन्द्रि एवं कर्मेन्द्रिरूप गौओं में खाने-पीने और खाए-पीये को पचाने की सामर्थ्य प्राय: समाप्त सी हो गई हो। अब जब कि वह खाए-पीये को प्राय: चबा और पचा ही न सकता हो, तो फिर कैसे तो वह सशक्त होगा, कैसे तो वह कुछ पढ़ेगा-लिखेगा, कैसे तो वह सोच- विचार करेगा, क्या तो वह मनन-चिन्तन करेगा, क्या तो वह समाज के उत्थान के लिये अपनी संन्यास अवस्था में कुछ दौड़-धूप करके कुछ परोपकार कर सकेगा आदि-आदि ?

[1]इस वृद्धावस्था में जबकि पिता जी की पिता को

---

१. नचिकेता सोचने लगा कि "मेरा पिता वाजश्रवस का पुत्र वाजश्रवस अपने जीवन को अपने सर्वमेध यज्ञ में समाज वा अध्यात्म के प्रति समर्पित कर रहा है, तो ऐसे समर्पण से भी अब क्या होगा जब कि उनकी शरीरगत ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों ने संसार में जो रस-पान करना था, वे कर चुकीं, संसार के भोगों में पड़कर, सन्तान उत्पन्न करके उनके पालन-पोषण में अपना सब कुछ खो चुकीं। अब ऐसे जीवन को समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब इन्द्रिय रूप गौएं बूढ़ी हो चुकी हैं, अशक्त हो चुकी है, सब प्रकार से असमर्थ हो चुकी हैं। उन से अब इस सन्यास अवस्था में "वसुदैव कुटुम्बकम्"-सब संसार को अपना परिवार समझकर क्या तो भला कुछ सेवा हो सकेगी–क्या तो भला कुछ हित सम्पादन हो सकेगा ! इस प्रकार की ज्ञानेन्द्रिय–कर्मेन्द्रिय रूप गौओं के दान से अर्थात् परोपकारार्थ प्रदान करने से तो सर्वमेध यज्ञ करने वाले मेरे पिता को ही आनन्द रहित लोकों की प्राप्ति होगी-सुख-सौभाग्य से रहित योनियों की प्राप्ति होगी। क्योंकि जब वे समाज में जायेंगे और समाज का कुछ उपकार-विशेष नहीं कर सकेंगे। उपकार विशेष तो करना दूर रहा और

प्रति समर्पित करना तो मानो समाज पर भार ही बनना है। क्योंकि अब तो उसकी ज्ञानेन्द्रियां-कर्मेन्द्रियां भली-भांति न कुछ खा-पी सकती हैं, न ही उस खाए-पीये को अब हजम कर-आत्मसात कर सकती हैं, न ही अब वे सबल-सशक्त होकर समाज वा राष्ट्र का कुछ विशेष उपकार ही कर सकती हैं। तो ऐसी इन्द्रिय रूप गौओं के दान से तो उनको अब आनन्दरहित लोकों-आनन्दरहित योनियों में ही जाना पड़ेगा। क्योंकि सशक्त शरीर–सशक्त इन्द्रिय रूप गौएं तो इनकी भोगों के प्रति समर्पित रहीं, अब इस बुढ़ापे में आकर अपने इसअशक्त शरीर से–अपनी इन अशक्त इन्द्रियों से क्या तो ये प्रभु भजन कर पायेंगे और क्या ही ये समाज की सेवा कर सकेंगे ? अर्थात् जो जीवन रूप आम्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्टा समाज से अपनी सेवा-शुश्रूषा, औषध-उपचार आदि कराते हुए वे समाज पर जब भार बनेंगे, तो उस से लोगों में उनके प्रति जब इसी लोक में ही अश्रद्धा उत्पन्न होगी—असम्मान अर्थात् तिरस्कार की भावना पैदा होगी, तो फिर आगे परलोक में उन का क्या भला होगा, यह तो प्रभु ही जाने !

नचिकेता ने सोचा कि पिता जी जब सब कुछ दे ही रहे

फल का गूदा था—अत्यन्त उत्तम भाग था, वह तो इन्होंने भोगों में गवाँ दिया, अब यह छिलका और गुठली रूप बुढ़ापा शेष रह गया है, अब ये उसे प्रभु के अर्पण करने जा रहे हैं। अब ये उस बुढ़ापे में समाज की भी क्या सेवा कर पायेंगे ? वा अब इस वृद्धावस्था में प्राणप्रिय प्रभु की भी ये क्या उपासना कर पायेंगे ? ऐसे दान से तो निःसन्देह ये आनन्दरहित योनियों को—दुःखमयी योनियों को ही प्राप्त होंगे। यह सब कुछ देख-भाल और सोच-विचार कर भी उस सुन्दर सात्विक दृश्य को देखकर श्रद्धावश नचिकेता ने अपने उस सर्वमेघ यज्ञ के कर्ता अपने पूज्यपिता वाजश्रवस से अपने सम्बन्ध में पूछा कि—"हे तात ! आप जब अपना सब कुछ दान कर रहे हैं तो फिर आप मुझे किसे देंगे ?" प्रथम बार उत्तर न मिलने पर उसने दुबारा-तिबारा पूछा कि "हे तात ! आप मुझे किसे देंगे……?" इस पर पिता ने क्रुद्ध होकर कहा कि—"मृत्यवे त्वा ददामि—इति"—मैं तुम्हें मृत्यु को दूंगा—मैं तुझे यम के हवाले करूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं–जब अपना धन-वैभव, गौएं आदि जो भी कुछ उनके पास है, वह चाहे उत्तम है चाहे अनुत्तम है, दे ही रहे हैं, उस सर्वस्व के दान आदि करने से जहां उन को यश मिलेगा वहां निकम्मी–अनुपयोगी वस्तुओं वा अपनी शिथिल पड़ गयी अपनी ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय रूप गौओं को दान करने से उन्हें अपयश भी मिलेगा। उन के समस्त धन-वैभव में, मैं भी उनका एक पुत्र हूँ–मैं भी उन की एक अमूल्य सम्पत्ति हूँ, अतः मुझे भी तो आखिर वे किसी को देंगे ही। और सम्भवतः मुझे जब वे किसी को देंगे वा मुझे जब वे समाज को समर्पित करेंगे तो इस से जहाँ उन को यश मिलेगा वहाँ उन का भला भी होगा। क्योंकि मैं आने वाले समय में अपनी समर्थ ज्ञानेन्द्रिय–कर्मेन्द्रिय रूप गौओं से बहुत कुछ खा-पीकर अपने को स्वस्थ-सशक्त बनाकर बहुत कुछ पढ़-लिखकर, बहुत कुछ मनन-चिन्तन कर–बहुत कुछ सोच-समझकर, बहुत कुछ दौड़-धूप कर हाथ-पैरों से समाज का हित कर सकूँगा। इस सबसे फिर मेरे पिता जी को आनन्द रहित लोकों की ही नहीं वरन् आनन्दमय लोकों की ही प्राप्ति होगी। यह सब बातें मन में विचार कर नचिकेता ने पिता के समीप जाकर पूछा कि—"पिता जी ! आप मुझ किस को दोगे ? पिता के कुछ भी उत्तर न देने पर नचिकेता ने दुबारा तिबारा पिता से पूछा कि—"पिता जी, पिता जी ! आप मुझे किस को दोगे, आप मुझे किस को दोगे······?" इस पर पिता ने क्रुद्ध होकर कहा कि—"मृत्यवे त्वा ददामीति"–मैं तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु को दूंगा–मैं तुम्हें मौत के हवाले करुंगा……?"

शुभ कर्मों में रत अपने पूज्य पिता से इस उत्तरं को पाकर वह सोचने लगा कि–"पिता ने सम्भवतः मेरे पुनः पुनः पूछने पर गुस्से में आकर–क्रोध में आकर यह उत्तर दिया हो या फिर इसका यह भी अभिप्राय हो सकता है कि सचमुच मुझे वे मृत्यु–यम के हवाले करेंगे ?"

इस 'मृत्यु' का अभिप्राय उस बालक नचिकेता ने पहिले यही समझा जो लोक में प्रायः प्रचलित है। अर्थात् मौत-जोवन का अन्त। इसलिये वह उसो आधार पर मन हो मन पहले सोचने लगा कि–"मैं बहुतों में तो प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ हूँ, और बहुतों में मैं मध्यम हूँ। परन्तु मैं निकृष्ट नहीं हूँ,-बिल्कुल निकम्मा ही नहीं हूँ। फिर मेरी समझ में नहों आता कि आखिर इस यम का–मृत्यु का क्या ऐसा कार्य है जो मुझसे वह करायेगा ? जिसके लिये कि मेरे पिता श्री वाजश्रवस आज मुझे उसे प्रदान कर रहे हैं।

फिर नचिकेता सोचने लगा कि चलो–"यदि मुझे मृत्यु–यम के प्रति भो अर्पित किया जा रहा है तो भी कोई बात नहीं क्योंकि हम संसार में चाहे बीते हुए काल पर दृष्टिपात करें और चाहे आने वाले समय को देखें, यह बात तो स्पष्ट ही है कि मनुष्य अपने कर्मानुसार खेत में खड़े धान आदि के समान पकता है, कटता है, और धान आदि के समान ही पुनः उत्पन्न होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। संसार के इस नियम से कोई भी नहीं बच सकता। अतः मुझे पिता ने यदि मृत्यु–यम के हवाले किया भी है तो भी घबराने की कोई बात नहीं है। पर अगर मेरे पूज्य पिता के मुझे मृत्यु-यम को प्रदान करने का अर्थ मृत्युरूप–यमरूप आचार्य है, जो मेरे इस वर्तमान स्वरूप को मार कर–समाप्त कर मुझे नए-ज्ञानी विद्वान् के रूप में जन्म देगा तो फिर यह बड़ा ही हितकर है–बडा ही प्यारा है।"

यह विचार कर वह नचिकेता अपने पिता के कथन को यथार्थ मानकर स्वयं ही सहज स्वभाव से श्रद्धावश वैवस्वत अर्थात् विवस्वान् के पुत्र यमाचार्य के द्वार पर गया और वहाँ उसने अलख जगाई। परन्तु किसी कारणवश यमाचार्य अपने घर पर न था, कहीं बाहर गया हुआ था। अतएव नचिकेता तीन दिनों तक यमाचार्य के द्वार पर निराहार पड़ा रहा। उसके आतिथ्य का कोई ध्यान भी नहीं किया जा सका।

यमाचार्य जब बाहर से आया और उसने उस जिज्ञासु–ब्रह्मज्ञान के पिपासु ब्रह्मचारी नचिकेता को निरन्तर तीन दिनों से निराहार पड़ा हुआ देखा, तो उसे बड़ा ही दुख हुआ, उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ। जैसे आज भी लोक व्यवहार में कोई विशेष व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य से किसी के पास आया हुआ हो और वह घर पर विराजमान हो, तो उसे घर आने पर बड़ा ही खेद होता है। वह मन ही मन विचारने लगा और अपने आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मन ही मन में अपने आपको कोसता हुआ कहने लगा कि-"हे विवस्वान के पुत्र यम! तेरे घर पर एक तपस्वी तेजस्वी वर्चस्वी ब्रह्मज्ञान का पिपासु ब्राह्मण अथिति के रूप में आया है। ऐसे श्रेष्ठ अतिथि के घर आने पर सद्गृहस्थ उस का मान-सम्मान करते हुए उस की आव-भगत् करते हुए उस की सुख-शान्ति का प्रयास करते हैं। अतः तेरा भी कर्तव्य है कि तू भी उस का हृदय से उदक-जल [हस्त-पाद आदि धुलाने को] आसन [बैठने को] और मधुपर्क [अल्पाहार-नाश्ते] आदि द्वारा सत्कार कर। तुझे सदा स्मरण रखना चाहिये कि जो भी गृहस्थ ऐसे उत्तम अतिथि के आने पर ऐसा नहीं करता उस के सम्बन्ध में कहा गया है कि—

[1]आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां
चेष्टापूर्ते पुत्र पशूंश्च सर्वान् ।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ कठोप० १.१.८॥

जिस अल्पबुद्धि-मन्दबुद्धि वाले मनुष्य के घर पर ब्रह्म का पिपासु सच्चा ब्राह्मण बिना आव-भगत् के-बिना मान-

१. अन्वयः-यस्य अल्पमेसः पुरुषस्य गृहे ब्राह्मणः अनश्नन् वसति (तस्य) आशा-प्रतीक्षे सङ्गतं, सूनृतं, च, इष्ट-अपूर्ते, पुत्र-पशून् च एतत् सर्वान् वृङ्क्ते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान के—बिना सेवा-सत्कार के—बिना कुछ खाए-पिये, भूखा-प्यासा बसता है-निवास करता है, उस मनुष्य के आशा, प्रतीक्षा, सङ्गत, सूनृता, [सत्य और मिठास से सम्पन्न वाणी] इष्ट-यज्ञ आदि शुभ कर्म और जल अर्थात् कुआँ-बावड़ी-तालाब, धर्मशाला, पाठशाला आदि सामाजिक कल्याण के उत्तम कर्म, पुत्र-सन्तान और दूध-घृत आदि देने वाले पशु—ये सब नष्ट हो जाते हैं ।

तात्पर्य यह है कि जिस घर-परिवार में ऐसे उत्तम-श्रेष्ठ अतिथियों का सत्कार नहीं हो पाता—उन की भोजन-आच्छादन आदि द्वारा सेवा-शुश्रूषा नहीं हो पाती, उस घर-परिवार को भविष्य में यह आशा छोड़ देनी चाहिये कि उन के घर-परिवार में ऐसे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ महापुरुषों का कभी आगमन होगा । उनके घर पर उस ज्येष्ठ-श्रेष्ठ अतिथि के आने की बात तो दूर रही, वहाँ तो सामान्य अतिथि भी नहीं आयेगा। क्योंकि वह सोचेगा कि जहाँ ऐसे श्रेष्ठ अतिथियों की पूछ नहीं, वहाँ उसे कौन घास डालेगा—वहाँ उस को कौन पूछेगा ?

अब जब ऐसे उत्तम-श्रेष्ठ पुरुषों के आगमन की—आने की घर-परिवार में आशा-उम्मीद ही नहीं, तो फिर उन की वहाँ प्रतीक्षा-इन्तिजार भी कैसी ! क्योंकि यह नियम है कि जहां किसी के आने की आशा होती ह, वहाँ ही तो उस के पहुँचने की प्रताक्षा होती है।

अब जब घर-गृहस्थ में सत्पुरुषों के आने की आशा और प्रतीक्षा ही नहीं रही—उम्मीद और इन्तिजार ही नहीं रही तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उन सत्पुरुषों के अभाव में घर-परिवार में "संगतम्" सत्संगति-सज्जन पुरुषों से सत्संग भी कैसे सम्भव हो सकेगा ? अब जब कि सत्पुरुषों का सङ्ग ही घर-गृहस्थ में सम्भव नहीं होगा तो फिर "सूनृताम्" सत्पुरुषों की संगति के प्रभाव से घर-परिवार के सदस्यों की वाणी में जो सत्य और मिठास उत्पन्न होता है, वह भी कैसे उत्पन्न हो सकेगा ? और ऐसे सत्पुरुषों का जब घर-परिवार में आगमन ही नहीं रहेगा तो घर-गृहस्थ में इष्ट कर्म अर्थात् जप-तप, साधना-स्वाध्याय, यज्ञ एव नामकरण-मुण्डन-उपनयन आदि संस्कार भी कैसे सम्भव हो सकेंगे ? उन के आगमन के अभाव में आपूर्त अर्थात् सामाजिक अभावों को पूर्ण करने वाले दान-पुण्य आदि कर्म भी कैसे हो सकेंगे—नल, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, पाठशाला, आश्रम, मठ आदि सर्वोपकारी शुभ कर्म भी कैसे बन सकेंगे ? क्योंकि ऐसे सत्पुरुष ही—ऐसे महांपुरुष ही —ऐसे श्रेष्ठ अतिथि ही तो घर-परिवारों मे आ-आ कर सबको इन शुभ कर्मों में—अपना समय और धन-धान्य आदि लगाने को प्रेरित करते हैं। अब जब ऐसे पुरुषों का घरों में आना-जाना ही नहीं रहेगा तो हमारे पुत्र-पशु भी नष्ट हो जायेंगे। अर्थात् हमारे पुत्रों को-हमारी सन्तानों को अच्छे आचार-व्यवहार की शिक्षा ही नहीं मिल पायेगी। तब वे नष्ट हो जायेंगे—अच्छे अचार व्यवहारों से हीन होकर बरबाद हो जायेंगे। इन सन्तानों की तो बात जाने दो, पशु भी नष्ट हो जायेंगे—हमारे घरों से गायब हो जायेंगे। क्योंकि जब घरों में दुग्ध, दधि, नवनीत, घृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के प्रेमी ज्ञानी महांपुरुष श्रेष्ठ अतिथि ही नहीं आयेंगे तो फिर धीरे-धीरे घरों में इन उत्तम खाद्य एवं पेय वस्तुओं का प्रचलन भी नहीं रहेगा। तो फिर घरों में गौ आदि उपकारी पशु भी शनैः–शनैः अदृश्य हो जायेंगे, उनके पालन–पोषण से भी प्रायः सब लोग विरक्त हो जायेंगे। हाँ वहाँ तो फिर सब पान-बीड़ी-सिग्रेट, अफीम-चरस, भांग–शराब आदि पीने में ही अपना हित समझेंगे। थोड़े बहुत दूध की चाय आदि के लिये आवश्यकता भी अनुभव हुई तो बाजार से सब ले लेंगे, भले ही फिर वह कैसा भी दूध क्यों न हो।

इस प्रकार घर-परिवार में श्रेष्ठ अतिथि के आदर-सत्कार के बिना आशा-प्रतीक्षा, संगति, सूनृता वाणी, इष्ट, आपूर्त कर्म तथा उत्तम पुत्र-पौत्र और गौ आदि उपकारी पशु घरों में से नष्ट अर्थात् अदृष्य हो जायेंगे और घर-परिवार बरबाद हो जायेंगे। परन्तु यदि बुद्धिमान् जन अपने घर-परिवारों पर ऐसे उत्तम-श्रेष्ठ महांपुरुषों का स्वागत-सत्कार करते रहेंगे तो उन्हें पुनः भी यह आशा होगी-उम्मीद होगी कि ऐसे उच्च विचारों वाले महांपुरुष उनके यहाँ आयेंगे। जब उनके आने की आशा होगी तो फिर उनके आने की प्रतीक्षा–इन्तिजार भी अवश्य होगी। मैंने देखा कि–एक घर पर जब एक विद्वान् को श्रद्धा और प्रेम से जब यज्ञादि के लिये निमन्त्रित किया गया, तो जिस दिन उन्होंने आना था, उस दिन घर में प्रातः से उनकी प्रतीक्षा की जाने लगी.........। जब वे वहां पहुंचे तो घर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार के सदस्यों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। वे सब फूले नहीं समाए। एक सदस्य तो खुशी के मारे उच्छल ही पड़ा........। ऐसे पुरुषों के आगमन पर घर में "संगतम्" सत्संग आदि भी हो जाता है। उन के संग में रह-रह कर शनैः शनैः सब घर के सदस्यों की वाणी में [सूनृता] जहाँ सत्य का—निश्छलता का—सरलता का आविर्भाव हो जाता है, वहां उस में मिठास भी भर जाता है। सत्पुरुषों के कारण ही फिर उस घर-परिवार में इष्टकर्म-जप, तप, स्वाध्याय, यज्ञ, संस्कार आदि भी होने लगते हैं। उन कर्मों के साथ-साथ उस घर परिवार का धन-वैभव बुरे कर्मों [सिग्रेट, बीड़ी, भांग, चरस, शराब वा किसी को सताने आदि-आदि] में लगने से बच कर यज्ञ, दान, पुण्य आदि सर्वोपकारी कार्यों में अर्थात् नल, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, पाठशाला, यज्ञशाला, आश्रम आदि के निर्माण में वा दीन-दुःखियों की सेवा-सहायता में लगने लगता है। इस प्रकार घर-परिवा में यह सब कुछ होते रहने से उनके पुत्र वास्तव में सुपुत्र बनकर माता-पिता को नरक से—दुःखों से—कष्ट-क्लेशों से तारने वाले बन जाते हैं। ऐसी सन्तान जब घर पर समय-समय पर पधारने वाले उन सत्पुरुषों को चाय, काफी, सिग्रेट-बीड़ी, तम्बाकू, अफीम, चरस, भांग, शराब, अण्डे-मांस आदि बुरे पदार्थों से सदा कोसों दूर देखती सुनती रहेगी और दुग्ध, घृत, शाक, फल आदि को उन्हें बड़ी रुचि से सदा सेवन करते हुए देखती-सुनती रहेगी, तो फिर उन की भी इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों में रुचि बढ़ेगी। तब घरों में दुग्दाधि देने वाले गौ-महिषी [भैंस] आदि उपयोगी पशुओं के पालन-पोषण की भी रुचि बढ़ेगी।

शास्त्र में अन्यत्र भी कहा गया है कि—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।

जिस के घर पर आया हुआ ज्ञानी विद्वान् तपस्वी श्रेष्ठ अतिथि निराश और हताश होकर लौटता है, वह उस गृहस्थ को अपने दुष्कृत देकर उस के पुण्य को हर लेता है। अर्थात् सेवा-सत्कार आदि करने, उपदेश-सदुपदेश वा आशीर्वाद पाने रूप सुख-सौभाग्य के कमाने के उस के सुअवसर को हर लेता है।

यह सब सोच-विचार कर धर्मभीरु वैवस्वत नचिकेता के समीप जल पानादि सहित जाकर बोला कि—"[1]हे ब्रह्मन्!" अतिथि के रूप में वर्तमान तू सब प्रकार से नमस्करणीय है—पूजनीय है—वन्दनीय है—सत्करणीय है। अतः तुझ उत्तम अतिथि को मेरा नमस्कार—तुझ श्रेष्ठ महमान को मेरा प्रणाम। यह सब कुछ मैं इसलिये करता हूँ कि—"स्वस्ति मे अस्तु" मेरा कल्याण हो।" सचमुच उस गृहस्थ का सब प्रकार से कल्याण ही होता है जो अपने द्वार पर अए हुए ऐसे श्रेष्ठ अतिथि का मन-वचन कर्म से मान-सम्मान करता है। इतना ही नहीं यमाचार्य इस से और आगे बढ़कर नचिकेता से कहता है—

१—नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मे अस्तु ।। कठोप० १.१.९ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे ब्रह्मन् ! हे ब्रह्म के अभिलाषी प्रिय नचिकेता ! जो तू मेरे घर पर तीन रात तक बिना कुछ खाए-पीये रहा–निरन्तर भूखा प्यासा रहा, उस के लिये मैं हृदय से प्रायश्चित करता हूँ, और प्रायश्चित के रूप में प्रति रात्रि के हिसाब से तुझे एक-एक वर करके तीन वर प्रदान करता हूँ। अतः तू तीन वर मांग और मुझ से वे प्राप्त कर।"

सौभाग्यवश ऐसा अवसर मिलने पर आज कल का सा कोई बालक वा युवा होता तो न जाने वह अपने उज्वल भविष्य के लिये क्या-क्या धन-वैभव, कार-कोठी, स्त्री-पुत्र, पद-प्रतिष्ठाएं आदि आदि मांगता, पर धन्य है यह नचिकेता जो यमाचार्य से उपलब्ध होने वाले अपने तीनों वरों में से जब प्रथम वर यमाचार्य से मांगता है तो वह यह मांगता है—

प्रथम वर

[1]शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा
स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीत
एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ कठोप० १.१-१० ॥

---

१ अन्वय :—मृत्यो ! गोतमः मा अभि शान्तसङ्कल्पः सुमनाः वीतमन्युः यथा स्यात् त्वत् प्रसृष्टं मा अभि प्रतीत सन् वदेत्, एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता यह अच्छी तरह से जानता है कि उसका पिता उस पर अप्रसन्न था। यह बात अलग है कि उस का अपने पुत्र पर नाराज होना उचित है वा नहीं। फिर भी उस की अपने पूज्य पिता के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति अनूठी थी, तभी तो नचिकेता ने अपने तीनों वरों में से प्रथम वर यमाचार्य से यह मांगा कि—"हे वैवस्वत्–हे यमाचार्य ! मेरा पिता गौतम मेरे प्रति शान्त सङ्कल्प वाला हो, अर्थात् शान्त भाव वाला हो, सुन्दर मन वाला हो, खिले हुए फूल के समान प्रसन्न मन वाला हो, तथा सब प्रकार से क्रोधरहित जैसे कि वह पहले था, वैसे ही वह अब भी होवे। जब आप मुझे यहाँ से भेजें और जब मैं आप के आदेशानुसार यहां से अपने पिता के पास लौटूं, तो वह मुझे सहज ही पहचान कर मुझ पर विश्वास करे, और मुझ से वह बड़े प्रेम से बोले। यह मेरा उन तीनों वरों में से प्रथम वर है जिसे मैं वरता हूँ–जिसे मैं चाहता हूँ।

इस पर यमाचार्य बोला कि—"हे नचिकेता ! उद्दालकवंशी अरुण का पुत्र तेरा पिता गौतम मुझ मृत्यु रूप यमाचार्य के यहां से भेजे हुए अर्थात् पढ़ा-लिखा कर सब प्रकार से सुयोग्य बनाकर विदा किये हुए तुझ ज्ञान ज्योति से जाज्वल्यमान स्नातक को देखकर जैसे पहले प्रसन्न रहता था वैसे ही अब भी प्रसन्न रहेगा, जैसे पहले खुश था वैसे ही अब भी खुश होगा, सब तरह से क्रोधरहित हुआ-हुआ शान्त भाव से सुख-चैन की नींद सोयेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुन कर नचिकेता को बड़ी ही प्रसन्नता हुई, बड़ी ही सान्त्वना मिली, तब उस ने दूसरा वर मांगा ।

दूसरा वर

नचिकेता दूसरा वर मांगते हुए कहता है-

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे,
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।। कठोप० १-१-१२ ।।
स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो,
प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्त्वं भजन्त
एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।। कठोप० १.१.१३ ।।

हे यमाचार्य ! स्वर्गलोक में किसी भी प्रकार का कुछ भी भय नहीं है। न वहाँ तू [मृत्यु-मौत] है और न ही वहाँ कोई बुढ़ापे से भयभीत होता है। अर्थात् न तो वहाँ मौत का कुछ डर है और न ही बुढ़ापे का कुछ भय है। स्वर्ग लोक ऐसा होता है कि जिस में मनुष्य भूख और प्यास दोनों को तैर कर शोकरहित हुआ-हुआ सदा प्रसन्न रहता है-सदा सुख से रहता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे मृत्यो ! हे वैवस्वत यम ! हे यमाचार्य ! सो तू उस स्वर्ग साधक अग्नि को भली-भांति जानता है। अतः तू मुझ श्रद्धावान् को उस स्वर्ग साधक अग्नि का उपदेश कर। स्वर्ग लोक के वासी अमृतत्व को भोगते हैं। इसलिये द्वितीय वर से मैं यही वरता हूँ–मैं यही मांगता हूँ ।

नचिकेता स्वर्ग को जानता है कि वह क्या होता है, कैसा होता है ? "स्वर्गः शब्द के निर्वचन से भी यह स्पष्ट है कि जो [स्वः–सुखं गमयतीति–स्वर्गः] "स्वः अर्थात सुख विशेष को प्राप्त कराए, वह स्वर्ग कहलाता है। फिर भी वह इस के सम्बन्ध में और स्पष्ट करके कहता है कि—"स्वर्गलोक वह होता है जहाँ किसी को किसी से किसी तरह का भी कोई डर नहीं रहता। जहाँ न तो वार्धक्य के कष्टों की कुछ सम्भावना रहती है और न ही कभी मृत्यु का त्रास बना रहता है। वहाँ न तो कोई भूख-प्यास से पीड़ित होकर मरता है और न ही कोई अति खा-पीकर ही बेहाल होता है। वहां तो मनुष्य शोक से ऊपर उठकर सदा हर्ष में रहता है-सदा सुख से रहता है ।" अब जिस स्वर्ग में सब सुखपूर्वक रहते हैं उस स्वर्ग को नचिकेता जानता तो है–भली-भांति समझता तो है, हृदय से वह उसे चाहता भी है, पर उस स्वर्ग को जिस अग्नि से जाना जा सकता है–जिस यज्ञाग्नि से प्राप्त किया जा सकता है, उस स्वर्ग साधक अग्नि का बोध नचिकेता को नहीं है। इस लिये वह इसी जिज्ञासा को ही हृदय में समाए हुए–हुए यमाचार्य से अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय वर में यही वरण करता है—अपने द्वितीय वर में वह यही मांगता है कि—"हे मेरे पूज्य आचार्य यम ! जिस स्वर्ग साधक अग्नि की परिचर्या कर के ज्ञानी बुद्धिमान् साधक अमरत्व को भोगते हैं—सुख विशेष का सेवन करते है—भूख-प्यास, ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुःख, हानि-लाभ, काम-क्रोध, शोक-मोह से ऊपर उठे हुए सदा प्रसन्न रहते हैं, उस स्वर्ग साधक यज्ञाग्नि को आप अच्छी तरह से जानते हैं—बहुत अच्छी प्रकार से समझते हैं। इतना ही नहीं आप उसे बहुत अच्छी तरह से सुना भी सकते हैं—बहुत अच्छी प्रकार से समझा भी सकते हैं। हे आचार्यवर ! मुझ में उस अग्नि-यज्ञाग्नि को जानने के लिये बड़ी श्रद्धा है, बड़ी तीव्र अभिलाषा है, अतः आप मुझ श्रद्धालु जिज्ञासु पिपासु नचिकेता को प्रकृष्ट रूप से उस अग्नि का उपदेश दीजिये !"

इस पर वैवस्वत यम ने कहा—"हे नचिकेता ! मैं उस स्वर्गसाधक अग्नि को—स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली अग्नि को जानता हूँ। अतः मैं तुझे उस को अच्छी प्रकार से समझाता हूँ और तू भी उस को मुझ से अच्छी प्रकार से समझ। हे नचिकेता ! तू उसको [1]अनन्त लोकों अर्थात् बहुविध सुखदायक लोकों—स्थानों को प्राप्त कराने वाली तथा उन लोकों—स्थानों में सदा प्रतिष्ठा—मान-सम्मान प्रदान कराने वाली बुद्धि रूपी गुहा में वर्तमान रहने वाली अग्नि जान।

१—यहां अनन्त का अर्थ अधिक अर्थात् बहुत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]यमाचार्य ने बड़े प्यार से उस नचिकेता को लोकों-बहुविध सुखदायक स्थानों आदि का तथा उन में सुख-सौभाग्यों के साधनों को प्राप्त कराने वाली उस आदि अग्नि-जन्म से जिस में सब संस्कार किये जाते हैं, का उपदेश किया। उस स्वर्ग अर्थात् ऐसे आदर्श लोक–ऐसे आदर्श स्थान–ऐसे आदर्श घर-

---

1 यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि–यम ने द्वितीय प्रश्न में 'ईश्वर प्राप्ति' के विषय में जो कि ईश्वर प्राप्ति का बड़ा गम्भीर प्रश्न है उसका उत्तर तो नचिकेता को सहज दे दिया, परन्तु आत्म विषयक प्रश्न के उत्तर देने के लिये अड़ गया और नचिकेता को नानाविध भय, लोभ आदि दिखा-दिखा कर उसकी परीक्षा लेने लगा।

ऐसे प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि द्वितीय वर के विषय में नचिकेता को परमात्म के विषय में कोई विशेष रहस्य की बात नहीं कहनी थी वरन् एक सामान्य सी चर्चा उस सम्बन्ध में करनी थी। क्योंकि वह कठोपनिषद् का विशेष प्रश्न नहीं था। विशेष प्रश्न–विशेष विषय तो इस कठोपनिषद् का तीसरा प्रश्न है–आत्मविषयक जिज्ञासा ही है। अतः इस विषय में उसकी परीक्षा लेनी स्वाभाविक थी।

इसके अतिरिक्त यहाँ स्वर्ग साधक अग्नि के सम्बन्ध में मुख्य रूप से प्रश्न किया गया है। अतः उस का मुख्य रूप से उत्तर देकर गौण रूप से अध्यात्म चर्चा भी की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

परिवार वा ग्राम-नगर वा राज्य जिस में किसी को किसी प्रकार का भी किसी से कुछ भय नहीं रहता। अर्थात् जहाँ सब निर्भय होकर विचरते हैं। यहां तक कि मृत्यु-मौत का भी जहां कोई भय नहीं रहता। कोई वैसे भी धन-धान्य आदि के लोभ में वा शत्रुता आदि के वशीभूत होकर किसी को मार देगा, ऐसी भी आशंका जहां नहीं होती। सहज ही जहाँ समय आने पर मृत्यू होती है। रोग आदि का भी जहाँ कोई भय नहीं रहता। क्योंकि यज्ञ-याग आदि शुभ कृत्यों से जब वहां सदा वातावरण शान्त और पवित्र रहता है तो फिर वहां रोग आदि की भी क्या सम्भावना हो सकती है? जहाँ बुढ़ापे का भी कोई डर नहीं रहता। अर्थात् बुढ़ापा तक भी जहाँ नहीं आता। क्योंकि वहाँ हित, मित और ऋत भुक् होने से-हितकारी, मिताहारी और ऋतु के अनुकूल भोजन करने वाले होने से सुदीर्घकाल तक प्रायः सब नीरोग, स्वस्थ, तेजोमय और ओजोमय ही सदा बने रहते हैं। अन्न-पान, खाद्य-पेय आदि पदार्थों का भी जहां इतना बाहुल्य होना है कि भूख-प्यास के कारण भी वहाँ कोई कभी पीड़ित हो नहीं होता, संयमी जहाँ सब ऐसे होते हैं कि अधिक खा-पीकर भी वहाँ कोई परेशान नहीं होता। ईर्ष्या-द्वेष आदि से भी किसी के हृदय जहाँ नही जलते, राग-मोह आदि से भी जहाँ व्यक्ति नहीं गलते, अपमान और तिरस्कार भी प्रायः जहाँ नहीं होते। प्रेम और प्यार से ओत-प्रोत हुए-हुए ही जहाँ एक दूसरे का सब हित सम्पादन करते रहते हैं, ऐसे स्वर्गमय स्थानों में-ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गमय घर–परिवारों में–ऐसे स्वर्गमय ग्राम–नगर और राज्यों में वा वातावरणों में ही शोकों का अतिक्रमण कर सदा हर्ष से–सुख से सब मनुष्य जीते हैं, ऐसे उस स्वर्ग साधक अग्नि–सुख विशेष की साधक अग्नि–ऐसे पूर्ण अभ्युदय को प्राप्त कराने वाली अग्नि–यज्ञाग्नि के लिए जो वा जितनी वा जिस प्रकार की और जिस प्रकार से ईंटे चिननी चाहिये, उन सब का भी यम ने नचिकेता को उपदेश कर दिया। अर्थात् उस यज्ञ के लिये जो भी साधन–सामग्री चाहिये, जितनी भी साधन सामग्री चाहिये, जिस प्रकार की भी साधन–सामग्री चाहिये और जिस भी प्रकार से उस का उपयोग करना चाहिये, उस सब का बोध भी यमाचार्य ने नचिकेता को करा दिया ।[1]

यह सब करने पर यमाचार्य ने जब नचिकेता से यह पूछा कि क्या उस की समझ में यह सब कुछ आ गया ? तो नचिकेता ने उन सब बातों को इतना एकाग्रचित्त होकर सुना था–इतना एकाग्रमन होकर समझा था–इतनी अच्छी तरह से हृदयङ्गम किया था कि यमाचार्य के पूछने पर नचिकेता ने उसे जैसे-जैसे यम से सुना था वा समझा था, हू-बहू–वैसे-वैसे ही उसे सुना दिया–समझा दिया। इससे उस कुशाग्र बुद्धि नचिकेता पर सन्तुष्ट हुआ-हुआ-प्रसन्न हुआ-हुआ यमाचार्य बोला,-क्या बोला?

मृत्युरूप महात्मा यमाचार्य उस बालक पर प्रसन्न हुआ–

१—यह धरती पर विराजमान स्वर्ग–सुख विशेष का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उससे यह बोला कि–"आज मैं तुझसे अत्यन्त तृप्त हुआ–हुआ–तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ–हुआ इस दूसरे वर के साथ-साथ तुझे एक और वर देता हूँ, वह यह है कि आज से यह अग्नि अर्थात् सुख विशेष को प्राप्त कराने वाली यह यज्ञाग्नि तेरे ही नाम से(नाचिकेत अग्नि के रूप में)प्रसिद्ध होगी। इसके अतिरिक्त तू आ मेरे पास और मेरे स्नेह-सम्मान रूप इस अनेक रूपों वाली-इस अनेकविध रंगों वाली सृङ्का माला को ग्रहण कर-धारण कर अर्थात् पहन।

नचिकेता की इस उच्च एकाग्रावस्था पर मुग्ध होकर–प्रसन्न होकर वैवस्वत यम ने उसको माल्यार्पण द्वारा सम्मानित किया तथा उसी के ही नाम से भविष्य में यह स्वर्ग साधक अग्नि 'नाचिकेत अग्नि' के रूप में प्रख्यात होगी, ऐसा एक और वर भी दिया।

जो त्रिणाचिकेता है– तीन बार जिसने अग्नि का चयन किया है। जिसने मन बद्धि और चित्त का निरोध किया है, वह इन मन बुद्धि-चित्त वा स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों को जान कर नाचिकेत अग्नि का चयन करता है। जो तीन के निरोध-पूर्वक चयन किया जा सकने योग्य है, ऐसी परमात्माग्नि का चयन करता है-उपासना करता है, वह मृत्यु के पाशों को-मृत्यु की

---

१. सृङ्काम्–मालाम। २ नचिकेता–न जानने वाला जिज्ञासु। चिकेतति गतिकर्मा। अथवा नचिकेता-निश्छल चित्तवृत्ति वाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेड़ियों को परे फैंक कर और शोक सागर से तैर कर स्वर्गलोक-सुख विशेष के लोक में हर्ष का अनुभव करता है।

हे नचिकेता! यह तेरी स्वर्ग साधक अग्नि है जिसको तूने अपने द्वितीय वर से वरा था, उसका तुझे उपदेश कर दिया। इस स्वर्ग साधक अग्नि को आने वाले साधक तेरे ही नाम से कहा करेंगे—तेरे ही नाम से स्मरण किया करेंगे। हे नचिकेता! अब तू तीसरा वर मांग।

जो त्रिणाचिकेत है, जिसने तीन बार स्वर्गसाधक सुख विशेष को प्राप्त कराने वाली नाचिकेत अग्नि का चयन किया—नाचिकेत अग्नि को उपासना की। माता पिता और आचार्य यद्वा ऋग्, यजु, साम से जिसने अपना सम्बन्ध जोड़ा, और यज्ञ दान तप रूप तीनों कार्य जिसने किये, वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है, वह वेदोत्पादक स्तुत्य दिव्य देव को जानकर अत्यन्त शान्ति को प्राप्त करता है।

व्याख्या—जो त्रिणाचिकेता है, तीन बार जिसने नाचिकेत अग्नि का चयन किया है, जो माता-पिता आचार्य या ऋग्यजुः साम-इन तीनों को जानता है, जो ऐसा ज्ञानी-बुद्धिमान् विद्वान् नाचिकेत अग्नि को प्रदीप्त करता है, वह मृत्यु के पाशों को परे फैंक कर शोक से ऊपर उठकर स्वर्गलोक में—सुख विशेष के धाम में मोद मनाता है—हर्ष मनाता है।

जो त्राचिकेत है—जिसने तोन बार नाचिकेत अग्नि का—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गप्रापक अग्नि का चयन किया है, जिसने अपनी तीनों सङ्कल्पाग्नियों से माता, पिता एवं आचार्य का संग प्राप्त किया है वा जिसने अपनी तीनों सङ्कल्पाग्नियों से ऋग् यजुः साम को प्राप्त किया है। अर्थात् इन तीनों का अध्ययन किया है। माता पिता और गुरु का संग करके भी जो यों ही नहीं पड़ा रहा—वा ऋग्, यजुः साम को पढ़कर भी जो यों ही नहीं पड़ा रहा, वरन् उनसे प्रेरणा पाकर उसने यज्ञ दान और तप रूप सत्कर्मों का आचरण किया है, बस वह तो फिर तर गया, वह तो फिर संसार के सर्वविध अभावों से वा सर्वविध कष्ट-क्लेशों से—दुःख-दौर्भाग्यों से उभर आया। उसने तो फिर संसार के सर्व विध सुख-सौभाग्यों को पा लिया, उसको तो फिर संसार में सर्वत्र धन-धान्य, स्त्री-पुत्र नीरोग्यता-स्वास्थ्य आदि रूप सब कुछ मिल गया। रहने-सहने का यथोचित स्थान समझो मिल गया, स्थान-स्थान पर मान—सम्मान, पद—प्रतिष्ठाएँ भी मिल गयीं। वह तो फिर भूख—प्यास के कष्ट को भी तर गया, अविद्या—अभाव आदि से भी तर गया। क्योंकि जिसको धार्मिक सुयोग्य माता—पिता और गुरु मिल गये हों—उनसे विद्या-सुशिक्षा, स्नेह और आशीर्वाद मिल गया हो। ऋग्, यजु और साम वेद के स्वच्छ निर्मल जल से परिपूर्ण तड़ाग में जिसने स्नान कर लिया हो। उसके आधार पर यज्ञ दान एवं तप रूप कर्म जिसने कर लिये हों, उसको फिर भला क्यों अभ्युदय न होगा—फिर भला क्यों त्कर्ष न होगा! उत्तम धार्मिक माता, पिता और आचार्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग से एवं ऋग्, यजु साम के अध्ययन आदि से तो फिर वह वेदोत्पादक परब्रह्म परमेश्वर को भी जानकर–उसके विषय में भी मनन–चिन्तन और निदिध्यासन आदि करके अत्यन्त शान्ति को पा जाता है। मृत्यु की बेड़ियों को भी वह तोड़ कर अर्थात् उनके प्रभाव से भी अप्रभावित हुआ–हुआ सुख विशेष के लोकों में सदा हर्ष का ही अनुभव करता रहता है।1

अथवा निम्न व्याख्या भी की जा सकती है।

जो त्रिणाचिकेत है, जिसने तीन बार स्वर्गसाधक नाचिकेत अग्नि का चयन किया है–उपासना की है। अर्थात् जिसने श्रवण, मनन और निदिध्यासन से निश्चल चित्तवृत्ति वाला बनकर उस स्वर्गसाधक–सुख विशेष की प्रापक अग्नि का साक्षात्कार किया है; जिसने मन, बुद्धि और चित्त का निरोध कर सूक्ष्म अहंकार में वर्त्तमान रहकर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तीनों सन्धियों को प्राप्त कर–पार कर ज्ञान कर्म उपासना रूप तीनों कर्मों को किया है, वह जन्म-मरण के बन्धन से तर जाता है–वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है और वह ब्रह्मयज्ञ वेदोत्पादक वा ब्रह्माण्डोत्पादक सब प्रकार से स्तुत्य देवाधिदेव परमेश्वर को जानकर–अपने भीतर निश्चय करके अर्थात् समाधिस्थ होकर अत्यन्त शान्ति–परमशान्ति को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त प्रसङ्ग में अर्थात् नचिकेता के द्वितीय प्रश्न के विषय में कई विद्वानों का तो बिना कुछ टीका–टिप्पणी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता का तीसरा वर

अब नचिकेता तीसरा वर मांगता है— [तीसरे वर का आधार 'अमृत' अर्थात् जीवात्मा का बोध और उसका उद्देश्य अमरत्व की प्राप्ति है]

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ १-१-२० ॥

(मनुष्ये प्रेते या इयं विचित्सा) मनुष्य के मरने पर जो यह विचित्सा-सन्देह उत्पन्न होता है कि पता नहीं मरने पर आत्मा रहता है वा नहीं । क्योंकि (अस्ति-इति-एके) मरने के उपरान्त भी यह बना रहता है, ऐसा कई कहते हैं, (न अयम्-

---

हुए सहज अनुवाद मिलता है । कईयों का इस विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण है । वह यह कि, कई इस स्वर्ग साधक अग्नि के चयन के परिणाम में उपलब्ध होने वाले स्वर्ग का अभिप्राय ऐसा साँसारिक सुख-सौभाग्य मानते हैं जिसमें मनुष्यों का जीवन देवों के समान व्यतीत होता है अर्थात् जहाँ परस्पर न किसी को किसी से किसी प्रकार का भय होता है, न ही वहाँ मृत्यु का त्रास होता है, न ही बुढ़ापे के रोग से कोई पीड़ित होता है, ऐश्वर्य भी वहाँ इतना होता है कि वहाँ खाने-पीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ति-इति-च-एके) और यह नहीं बना रहता, ऐसा भी कई कहते हैं। (त्वया अनुशिष्टः अहम् एतत् विद्याम्) तुझ से शिक्षा पाया हुआ मैं इस रहस्य को जान जाऊँ (एषः वराणां तृतीयः वरः) यह मेरा उन वरों में तीसरा वर है।

का कुछ अभाव नहीं होता जिससे भूख–प्यास किसी को सता सके, न वहाँ पहनने ओढ़ने के साधनों का अभाव होता है जिसमें लोग सर्दी गर्मी में वस्त्रादि के अभाव में कष्ट पाएं, वरन् वहाँ तो सब सुखी हों, नीरोग हों, स्वस्थ हों, सब प्रकार के सांसारिक दुःखों से–शोकों से ऊपर उठ कर हर्ष का अनुभव करते हैं। यहाँ तक कि उनको अनन्त अर्थात् बहुविध धन-धान्य और पद–प्रतिष्ठाएँ, मान–सम्मान वहाँ मिले। तात्पर्य यह है कि उनको स्वर्ग-सुख विशेष से सम्पन्न वह संसार मिले जिसमें रहते हुए भी वे बन्धनों से मुक्ति जैसा सुख अनुभव कर सकें। परन्तु कई का यह मत है कि श्लोक के जो शब्द हैं उनसे पता लगता है कि यह मुक्ति का वर्णन है। क्योंकि शरीर होगा तो भूख-प्यास–मृत्यु आदि के दुःख भी जरूर होंगे। अतः सकाम भाव से स्वर्गसाधक अग्नि का चयन किया जायेगा तो सांसारिक स्वर्ग मिलेगा, देव योनि–देवों जैसा जीवन एवं सुख-सौभाग्य मिलेंगे। पर उपकार, निष्काम भाव से अग्नि का चयत किया जायेगा तो मोक्ष भी मिलेगा। इसलिये द्विविध व्याख्या ऊपर दे दी गई है। पुनरपि मैं अभी इस प्रश्न को और अधिक विचारणीय समझता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता ने अपने प्रथम वर में अपने पिता वाजश्रवस की शान्ति और प्रसन्नता को प्राप्त किया और अपने द्वितीय वर में उस ने स्वर्गसाधक अग्नि को इतनी अच्छी तरह से समझा कि यमाचार्य ने उस पर प्रसन्न होकर उसी के नाम से ही उस स्वर्गसाधक अग्नि को "नाचिकेत अग्नि" घोषित कर दिया। और अब वह अपने तृतीय वर में यमाचार्य से कहता है कि— "मैं यह जानना चाहता हूँ कि मनुष्य के मर जाने के बाद आत्मा रहता है या नहीं ?" क्योंकि कई ऐसा मानते हैं कि 'मरने के बाद आत्मा रहता है और कई एक ऐसे भी हैं जो यह मानते है कि मरने के बाद आत्मा नहीं रहता।" अब आप मुझे यह समझाईये कि तथ्य क्या है ? आया शरीर के समाप्त होने पर यह आत्मा भी समाप्त हो जाता है वा शरीर के समाप्त होने पर भी यह आत्मा बना रहता है ?"

यमाचार्य इस प्रश्न का उत्तर नचिकेता को देना नहीं चाहता, इसलिये वह उस को नानाविध प्रलोभनों में उलझाते हुए कहता है ।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ १-१-२१ ॥

(देवैः अपि अत्र पुरा विचिकित्सतम्) बड़े-बड़े विद्वानों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इस विषय में पहले सन्देह किया है और इस विषय में जानने की उत्कट अभिलाषा अभिव्यक्त की है। परन्तु यह उनकी भी समझ में नहीं आया (न हि सुविज्ञयम्) क्योंकि यह सहज ही समझ में आने वाला है। (एष धर्मः अणुः) यह विषय तो बड़ा ही सूक्ष्म है। इसलिये (नचिकेतः ! अन्यं वरं वृणीष्व) हे नचिकेता ! तू इस विषय को छोड़ कर कोई और वर मांग। (मा मा उपरोत्सीः) तू मुझे इस विषय में विवश न कर—मजबूर न कर, ([1]एनं मा अतिसृज) तू इस प्रश्न प्रहार को मुझ पर मत छोड़ अर्थात् तू इस प्रश्न को छोड़ दे—इस वर को छोड़ दे।

यमाचार्य नचिकेता के बड़े महत्त्वपूर्ण आत्मविषयक प्रश्न को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ, पर इस प्रश्न की सूक्ष्मता और कठिनाई को देखकर वह उस को अन्य वर के लिये कहता है। यमाचार्य नचिकेता से कहता है कि—"हे नचिकेता—यह विषय इतना सूक्ष्म है, इतना गम्भीर है, इतना रहस्यमय हैं, इतना कठिन है, कि इस का जानना सुगम नहीं है, इसका समझना सहज नहीं है—सरल नहीं है, इसका सोचना आसान नहीं है। यहाँ तक कि पुराने जमाने के जो बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वान् जन थे, जो सदा ज्ञान-विज्ञान के प्राप्त करने में ही लगे रहते थे, और उस ज्ञान-विज्ञान के अनुसार आचरण कर के अपने जीवन को

---

१ तू इस वर को मुझे लौटा दे, इस आत्म विषयक वर को मेरे लिये छोड़ दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सदा दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला बनाने में सतत् प्रयत्न-शील रहते थे, ऐसे दिव्य देवों ने भी इस विषय में जिज्ञासा प्रकट की-इस विषय को जानने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की, और इस को जानने का हार्दिक प्रयास भी किया, पर तब भी वे इस विषय को जान नहीं सके–इस विषय को समझ नहीं सके, तो फिर हे नचिकेता ! तुझ बालक को इस का बोध कैसे हो सकेगा ? इसलिये अच्छा यही है कि तू इस वर के लिये मुझ से आग्रह न कर–तू इस आत्मविषयक वर के लिये मुझ से हठ न कर, और इस के स्थान पर तू दूसरा कोई वर मांग ले। यमाचार्य के कहने पर नचिकेता अपने प्रश्न की गहराई और कठिनाई को समझ कर भी न तो वह कुछ घबराया और न ही उसकी जिज्ञासा तथा उत्साह में कुछ कमी आई, वरन् उस ने और भी दृढ़ता से कहा—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल
त्वं च मृत्यो यन्न सूविज्ञेयमात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥ १-१-२२ ॥

(मृत्यो ! अत्र दैवैः अपि विचिकित्सितम्) हे यमाचार्य ! यह ठीक है कि इस विषय में बड़े-बड़े ज्ञानी-विद्वानों ने भी सन्देह किया, इस विषय को जानने की उन्होंने हार्दिक इच्छा की और खूब इस विषय पर विचार भी किया पर वे किसी निर्णय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पहुँच पाए। (त्वं च किल यत् न सुविज्ञेयम् आत्थ) और तू भी जिमे सुविज्ञेय अर्थात् सुगमता से–आसानी से समझ में आने वाला नहीं कहता है। परन्तु यह भी निश्चित है कि (अस्य वक्ता च त्वादृक् अन्यः न लभ्यः) इस विषय का ज्ञाता और उपदेष्टा भी तुझ जैसा कोई अन्य नहीं मिल सकेगा। इसलिये मेरी समझ में तो (एतस्य तुल्यः कश्चित् अन्यः वरः न) इस वर के समान कोई और वर ही नहीं है, इस जिज्ञास्य विषय के सदृश कोई और विषय ही नहीं है।

हे यमाचार्य ! आप के कथनानुसार इस में कोई सन्देह नहीं कि यह प्रश्न बड़ा ही सूक्ष्म है–यह आत्मविषयक प्रश्न बड़ा ही गम्भीर है–बड़ा ही कठिन है। सरलता से–आसानी से यह समझ में आने वाला नहीं है। फिर बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वानों ने भीइस विषय का अवगाहन किया है, इस विषय का मन्थन किया है–इस विषय पर बहुत कुछ पढ़ा–सुना है, सोचा और विचारा है, पर फिर भी वे किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच पाये हैं। इसलिये मैं इस वर को छोड़ दूँ, और किसी और वर को मांग लूँ। पर मैं सोचता हूँ कि आपके इस कथन से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि–यह विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ऐसे महत्त्व-पूर्ण, सूक्ष्म एवं कठिन आत्मविषयक प्रश्न को बताने और समझाने वाला आप जैसा अनुभवी आचार्य मुझे बहुत खोजने पर भी कोई दूसरा नहीं मिलेगा। इसलिये मैं इस प्रश्न के सदृश–इस वर के सदृश किसी और वर को नहीं समझता हूँ, और आपसे आग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हूँ कि आप मुझे इसी विषय में ही उपदेश दीजिये।

इस आत्मविषय के इतना गहन-गम्भीर और कठिन होने पर भी नचिकेता जब अपने प्रश्न के प्रति—अपनी जिज्ञासा के प्रति अत्यन्त सुदृढ़ एवं सजग रहा, अर्थात् उससे वह टस से मस नहीं हुआ, तो इस पर यमाचार्य उसको इस लक्ष्य से च्युत करने के लिये वा उसकी जिज्ञासा की पूर्ण परीक्षा करने के लिये उस को नानाविध प्रलोभन देता हुआ कहता है—

शतायुषः पुत्र-पौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च
जीव शरदो यावदिच्छसि ॥१.१.२३॥

(शतायुषः पुत्र-पौत्रान् वृणीष्व) हे नचिकेता ! तू सौ-सौ वर्षों तक जीने वाले पुत्र—पौत्रों को मांग, (बहून् पशून् हस्ति-हिरण्यम् अश्वान्) बहुत से गौ आदि पशु मांग, हाथी-घोड़े मांग, सोना—चान्दी मांग, (भूमेः महत् आयतनं वृणीष्व) भूमि के बहुत बड़े विस्तृत भाग को माँग, और (स्वयं च जीव यावत् शरदः इच्छसि) तू स्वयं भी उतने ही वर्षों तक जीवित रह, जितने वर्षों तक कि तू जीना चाहता है।

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व
वित्तं चिरजीविकां च ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि । १.१.२४ ।

(एतत् तुल्यं यदि वरं मन्यसे, वृणीष्व) इस वर के समान यदि तू कोई और वर समझता है, तो तू वह मांग, (वित्तं चिरजीविकां च) धन और चिर काल तक की आजीविका मांग। (नचिकेतः ! त्वं महाभूमौ एधि) हे नचिकेता ! तू इस भूमि के बहुत बड़े भाग पर सब प्रकार से बढ़ने वाला हो । अर्थात् तू इस विस्तृत भूमि पर शासन कर । कहाँ तक कहुँ, तू चाहे तो (त्वा कामानां कामभाजं करोमि) मैं तुझ को सम्पूर्ण कामनाओं का भोग करने वाला बना दूं ।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ॥
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ १-१-२५ ॥

(ये ये कामाः मर्त्यलोके दुर्लभाः) जो जो कामनाएं इस मनुष्य लोक में दुर्लभ हैं (सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व) उन सम्पूर्ण कामनाओं को अपनी इच्छानुसार मांग ले। (इमाः सरथाः सतूर्याः रामाः) देखो, ये रथों के सहित, बाजे-गाजों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित रमणीय स्त्रियाँ हैं। ये ऐसी सुन्दर रमणीय और प्यारी स्त्रियां हैं कि (ईदृशाः मनुष्यैः न हि लम्भनीयाः) ऐसी साधारण मनुष्यों के द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकतीं। इसलिये (मत् प्रत्ताभिः आभिः परिचारयस्व) मेरे द्वारा प्रदान की हुई इन सुन्दर रमणीय स्त्रियों से तू अपनी सेवा-शुश्रूषा करा, परन्तु (नचिकेतः ! मरणं मा-अनुप्राक्षीः) हे नचिकेता ! तू मृत्यु के विषय में मत पूछ–मृत्यु के उपरान्त की अवस्था के विषय में मत पूछ। यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। यह बड़ा ही सूक्ष्म विषय है ।

उपर्युक्त २३–२५ तक इन तीनों श्लोकों में यमाचार्य नचिकेता को नानाविध प्रलोभन देता हुआ कहता है—

हे नचिकेता ! तू सौ-सौ सालों तक जीने वाले प्यारे प्यारे पुत्र-पौत्र मांग, बहुत सी गाय-भेड़-बकरियाँ मांग, हाथी-घोड़े मांग, सोना-चान्दी, हीरे-मोती मांग, पृथिवी का बहुत बड़ा विस्तृत भाग मांग, जिस पर कि तू बहुत समय तक निरंकुश राज्य कर सके। इतना ही नहीं जितने वर्षों तक तू इन सब धन-वैभव और सुख-सुविधाओं को भोगना चाहे, उतने वर्षों तक की लम्बी आयु मांग। इस वर के बराबर यदि तू कोई और वर समझता है, तो तू उस को वर–तो तू उस को मांग। तू धन-सम्पत्ति मांग और चिरकाल तक चलने वाली आजीविका मांग–बहुत समय तक चलने वाली रोजी-रोटी मांग, तू बहुत बड़े भू-भाग को प्राप्त कर–तू लम्बी-चौड़ी दुनिया को प्राप्त कर। तू बहुत बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य का अधिपति बन—तू चक्रवर्ती राजा बन। कहाँ तक कहूँ, कहाँ तक गिनाऊँ, यदि तू चाहे तो मैं तुझे सर्वविध कामनाओं का—सब प्रकार के पदार्थों का—सर्वविध सुख-सौभाग्यों का सफलतापूर्वक उपभोग करने वाला बना दूं। जो-जो कामनाएं इस संसार में दुर्लभ हैं, जो-जो भोग इस जगत् में प्राप्त करने सरल नहीं हैं—आसान नहीं हैं, उन्हीं सब कामनाओं को तू अपनी इच्छानुसार मांग—उन्हीं सब भोगों को तू दिल खोल कर मांग—जी भर कर मांग। यहां तक कि ये जो सुन्दर-सुन्दर रमण करने के योग्य स्त्रियाँ हैं—हृदय को आकर्षित करने वाली सजी-धजी प्रिय अप्सराएं हैं, जिन को प्राप्त करना अन्य मनुष्यों के लिये आसान नहीं है, उन्हीं प्यारी-प्यारी और चित्त को हरने वाली रथ-यानों पर आरुढ़ हुई-हुई अप्सराओं को बाजों-गाजों केसाथ तू स्वीकार कर। मैं यह सब-कुछ तुम्हें बड़े स्नेह-सम्मान से सहज ही प्रदान कर रहा हूँ। अतः बड़े स्नेह-सम्मान के साथ मेरी प्रदान की हुई इन सुन्दर-सुन्दर अप्सराओं का—इन सुन्दर-सुन्दर रमणाय नारियों का तू बड़े प्रेम से उपभोग कर—बड़े प्रेम से तू इन सब से अपनी परिचर्या करा—अपनी सेवा-शुश्रूषा करा। परन्तु हे नचिकेता! मृत्यु के विषय में तू कुछ मत पूछ, तू मरणोपरान्त आत्मा रहता है वा नहीं, इस सम्बन्ध में कुछ मत पूछ।

नचिकेता का तीसरा प्रश्न था आत्मविषयक अर्थात् 'मरणोपरान्त आत्मा रहता है वा नहीं ?' वैसे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में दो मत हैं, एक आस्तिक और दूसरा नास्तिक। आस्तिकों का कहना है कि–शरीर नश्वर है–नष्ट होने वाला है और आत्मा अमर है–सदा रहने वाला है। इसलिये आत्मा और शरीर का जब संयोग होता है, तो वह जन्म कहलाता है। और जब इनका वियोग होता है, तब उसे मृत्यु कहते हैं। यह अमर रहने वाला आत्मा ही अपने कर्मों के अनुसार नाना योनियों में आता जाता रहता है। नास्तिकों का कहना यह है कि पांचों तत्त्वों के एक विशेष रूप में मिलने का परिणाम जन्म है–आत्मोत्पत्ति है। इसलिये जब मृत्यु होती है–शरीर नष्ट होता है–ये पांचों तत्त्व बिखरते हैं, तो शरीर के नष्ट होने के साथ-साथ वह आत्मा भी नष्ट हो जाता है। नचिकेता एक सीधा-सादा, भोला-भाला जिज्ञासु ब्रह्मचारी था, इसलिये उस को इस विषय में सन्देह होना स्वाभाविक था। इसलिये उस ने अपने तीसरे वर में यमाचार्य से यही वर मांगा–यही प्रश्न पूछा कि—"हे यमाचार्य! मनुष्य के मरने के उपरान्त कई कहते हैं कि 'आत्मा रहता है' और कई कहते हैं कि 'नहीं रहता' अतः आप मुझ जिज्ञासु को इस विषय में उपदेश कीजिये कि मरणोपरान्त आत्मा रहता है वा नहीं ?"

यमाचार्य ने पहले दो वरों के समान यह तीसरा वर भी नचिकेता को सहज ही नहीं दे दिया–पहले दो प्रश्नों की तरह उस के इस तृतीय प्रश्न का उत्तर सहज ही नहीं दे दिया, वरन् उसने उस की पर्याप्त परीक्षा ली। क्योंकि प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में केवल उन्हीं सुपात्र मनुष्यों के आत्मसम्बन्धी प्रश्नों का समाधान किया जाता था जिनकी आचार्य भली-भांति परीक्षा ले लेते थे–जिन को आचार्य अच्छी तरह से परख लेते थे। नचिकेता भी इस आत्मविद्या का अधिकारी है वा नहीं–सुपात्र है वा नहीं, यह सब कुछ परखने के लिये ही नचिकेता को ये सब प्रलोभन दिये गए–ये सब संसार के सर-सब्ज बाग दिखाए गए, पर नचिकेता भी बड़ा ही वीर, सुदृढ़, वैराग्य का धनी ऐसा ब्रह्मचारी निकला कि न तो इस प्रश्न की गम्भीरता और कठिनाई ही उस को अपने उद्देश्य से च्युत कर सकी, और न ही इस मार्ग में आने वाली बाधायें ही उसको अपने लक्ष्य से बाधित कर सकीं, न ही इस अध्यात्म पथ में आने वाले आँखों को चका-चौन्द कर देने वाले और हृदय को डाँवा-डोल कर देने वाले नानाविध भोगविलास ही उसको अपने उद्देश्य से डिगा सके। इस प्रकार जब–वह इन सब बाधाओं में भी स्थिर चित्त बना रहा–दृढ़ निश्चय वाला बना रहा–भीतर से वैराग्य का धनी बना रहा तो वह यमाचार्य से दृढ़तापूर्वक बड़े धैर्य के साथ बोला—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ १.१.२६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्तक ! श्वोभावा) हे मृत्युरूप आचार्य ! ये जितने भी सुख-सौभाग्य हैं–भोग-विलास के साधन हैं, ये सभी श्वोभावी है–कल तक रहने वाले हैं। आज हैं तो कल नहीं है, और अगर कल हैं तो परसों नहीं है। अर्थात् ये सब क्षणभंगुर हैं–नश्वर हैं–अस्थिर हैं–अनित्य हैं। (मर्त्यस्य सर्वेन्द्रियाणां यत् एतत् तेजः [तत्] जरयन्ति) मनुष्य की समस्त इन्द्रियों का जो यह तेज है उसको ये जीर्ण कर देते हैं–क्षीण कर देते हैं।(अपि सर्वं जीवितम् अल्पम् एव) फिर ये भोग-विलास ऐसे हैं कि इनके भोगने के लिए यह सारा जीवन चाहे वह कितना भी लम्बा क्यों न हो, वह भी बहुत थोड़ा सा ही प्रतीत होता है। इसलिये (तव एव वाहाः तव नृत्य-गीते) ये सब हाथी -घोड़े, रथ-यान आदि वाहन तेरे ही पास रहें, ये नाच-गान आदि भी तेरे ही बने रहें। मुझे इन सब अस्थिर पदार्थों की कुछ अभिलाषा नहीं।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ १.१.२७ ॥

हे वैवस्वत यम ! (मनुष्यः वित्तेन न तर्पणीयः) मनुष्य धन से कभी भी तृप्त नहीं हो सकता। और (त्वा चेत् अद्राक्ष्म वित्त लप्स्यामहे) अब जो हमने तेरा दर्शन कर लिया है–तुझ मृत्यु का रहस्य जान लिया है, तो फिर हम धन भी तुझसे पा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेंगे,(यावत्-ईशिष्यसि जीविष्यामः)जितना तू चाहेगा उतना हम जी भी लेंगे। तो ऐसी परिस्थिति में फिर इस धन-धान्य का, जमीन-जायदाद का, बहुत बड़ी आयु का, मांगना फिर व्यर्थ ही है।(वरः तु मे वरणीयः स एव)मेरा वरणीय वर तो वही है-मेरा प्रष्टव्य प्रश्न तो वही है, मेरा जिज्ञास्य विषय तो वही है।

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः

क्वधः स्थः प्रजानन् ।

अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे

जीविते को रमेत ॥ १.१.२८. ।

हे यमाचार्यः- (अजीर्यताम् अमृतानाम् उपेत्य) बार्धक्य से जीर्ण-क्षीण न होने वाले तुझ सदृश अमर मुक्त पुरुषों को पाकर (कु–अधः–स्थः जीर्यन् मर्त्यः प्रजानन्) इस पृथिवी पर नीचे रहने वाला, जीर्ण-क्षीण होता हुआ, अपने को मरण धर्मा मनुष्य समझता हुआ (वर्ण–रति–प्रमोदान्–अभिध्यायन्) वर्ण–रति-प्रमोदों अर्थात् रङ्ग–रूप और रमण के आधार पर होने वाले आमोद-प्रमोदों को–भोग-विलासों को और उनके पश्चात् उनके दुःखद एवं पश्चात्ताप पूर्ण परिणामों को सोचता-विचारता हुआ (अतिदीर्घे जीविते कः रमेत) इस अतिदीर्घ जीवन में कौन बुद्धिमान् रमण करेगा ?

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो

यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योऽयं वरो गूढ़मनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ १.१:२९ ॥

(मृत्यो ! यस्मिन् इदं विचिकित्सन्ति) हे मृत्यु रूप आचार्य! जिसके विषय में सब यह [कि मरने के उपरान्त आत्मा रहता है वा नहीं] सन्देह करते हैं—सब यह जिज्ञासा रखते हैं कि (यत् महति साम्पराये तत् नः ब्रूहि) जो महान् परमार्थ की अवस्था में प्राप्त होता है वा जो महान् उद्योग अर्थात् जो अहिंसा सत्य आदि महाव्रतों के पालन करने पर समझ में आता है, तू उसका हमें उपदेश कर। (यः अयं गूढ़म् अनुप्रविष्टः वरः) जो यह अत्यन्त गूढ़ता—गहराई को प्राप्त हुआ—हुआ वर है या जो यह हृदय की गहराई में प्रविष्ट हुआ—मन में बैठा हुआ प्रश्न है (तस्मात् अन्यं नचिकेता न वृणीते) उससे भिन्न किसी वर का यह जिज्ञासु नचिकेता वरण नहीं करता।

ऐसे सूक्ष्म विषयों के—ऐसे गूढ़तम विषयों के जानकार प्रायः दुर्लभ हुआ करते हैं। नचिकेता ने यम से कहा कि तुम जैसा आत्मज्ञ-आत्मज्ञानी भला मुझे फिर कब और कहाँ मिलेगा? इसलिये हे यमाचार्य ! आप जैसे महापुरुष को पाकर फिर भला मैं इन सांसारिक धन-वैभव आदि की क्यों कामना करूँ। फिर हे अन्तक ! हे मृत्यु रूप आचार्य ! जितने भी सुख-सौभाग्यों की, धन-धान्यों की, स्त्री-पुत्रों की, रुपये—पैसों की, सोने-चान्दियों की, वस्त्र-आभूषणों की, जमीन-जयदादों की, खाद्य और पेयों की, भोग्य भोगों की आपने चर्चा की, वे सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्वोभावा:' हैं, कल तक रहने वाले हैं, अर्थात् वे सब नश्वर हैं, अस्थिर हैं, अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं । क्षण भर पहले थे तो अब नहीं हैं, अब हैं तो क्षण भर बाद में नहीं हैं; सुबह थे तो अब दोपहर को नहीं हैं, अब दोपहर में हैं तो फिर शाम को नहीं हैं, दिन में हैं तो फिर रात को नहीं हैं, अब रात को हैं तो कल प्रभात में नहीं हैं, कल थे तो आज नहीं हैं, आज हैं तो कल नहीं हैं, कल हैं तो परसों नहीं हैं। फिर इतना हो नहीं कि ये सब स्वयं ही अस्थिर हों–क्षणभंगुर हों–अनित्य हों–नश्वर हों, वरन् इनके कुछ क्षण-पल-घड़ो-दिन-रात, मास-वर्षों तक विद्यमान रहने पर भी इनसे जो उपलब्ध होने वाला सुख है–इनसे जो उपलब्ध होने वाली तृप्ति है, वह भी अस्थिर है–अस्थाई है-क्षणिक है। कितने भी प्रिय से प्रिय खाद्य और पेय पदार्थ क्यों न हों, कितने भी सुन्दर से सुन्दर वस्त्र-आभूषण क्यों न हों, कितने भी मनमोहक दृश्य क्यों न हों, कितनी भी सुन्दर से सुन्दर चित्त को हरने वाली स्त्रियाँ क्यों न हों, कितने भी प्यारे से प्यारे पुत्र-पौत्र क्यों न हों, कितने भो दिव्य से दिव्य रसोले भोग क्यों न हों, वे सब भी क्षण-पल, घड़ी दो घड़ी, दिन दो दिन, मास दो मास, वर्ष दो वर्ष के उपरान्त नीरस प्रतीत होने लगते हैं। थोड़ी देर पहले जिन खाद्य और पेयों को खाने-पीने के लिए मनुष्य इतने उत्साह से आगे बढ़ता है अब उन्हीं वस्तुओं को अपने ही हाथों से परे धकेल कर उल्टा ही चल देता है "बेटा! कुछ और खा–पी लो!", "बस माँ अब और नहीं खाया-पीया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता।" थोड़ी देर पहले जिसको खाने-पीने में इतना रस मिल रहा था, वे ही खाद्य-पेय अब नीरस प्रतीत होने लगे। वे ही सुन्दर-सुन्दर दृश्य जिनको देखने के लिये यह सहस्रों रुपये खर्च करके आया था उन्हीं को छोड़-छाड़ कर अब यह घर भागा जा रहा है। दृश्य तो सब वही हैं, यह अब क्या बात हो गई? ये वे ही स्त्री-पुत्र हैं जिन्हें हृदय से लगा-लगा कर यह मनुष्य कभी थकता नहीं था-कभी अघाता नहीं था, पर वही स्त्री-पुत्र हैं जिनसे विरक्त हुआ-हुआ यह मनुष्य मुख मोड़ कर अब वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में प्रवेश कर रहा है। एक राष्ट्रपति पद के लिये सौ तिगड़म लड़ा रहा है—बहुत प्रकार की दौड़-धूप कर रहा है, पर दूसरा श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद है, बहुत आग्रह करने पर भी जो उससे विरक्त हो रहा है। अतः हे अन्तक! हे यम! ये सब भोग—ऐश्वर्य जहाँ अनित्य हैं—अस्थिर हैं, क्षणभंगुर हैं, वहाँ यह आपात रमणीय हैं—इनसे मिलने वाला सुख—इनसे मिलने वाली तृप्ति भी अस्थिर है—क्षणिक है—अनित्य है। फिर ये संसार के भोग ऐसे हैं कि अगर मनुष्य इनका भोग करे अथ त, आंख से सदा सुन्दर-सुन्दर रंग-रूपों को ही देखता रहे, कानों से इन सुन्दर-सुन्दर ध्वनियों को ही सुनता रहे, नासिका से इन नाना-विध गन्धों-सुगन्धों को ही ग्रहण करता रहे, जिह्वासे इन नानाविध स्वादों का ही आस्वादन करता रहे, स्पर्श से—त्वचा से इन सबका भीतर बाहर से स्पर्श ही करता रहे, तो ये सब भोग इस मनुष्य की सब इन्द्रियों में जो तेज है, जो ओज है, जो चमक है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दीप्ति है, जो कान्ति है, उसी को ही हरण कर लेते हैं—उसी को ही धीरे-धीरे क्षीण कर देते हैं-उसी को ही धीरे-धीरे चौपट कर देते हैं। मनुष्य जब जागता है—जब होश में आता है—जब वह सावधान होता है, तो तब वह अवाक् रह जाता है—वह यह सोचता है कि यह सब क्या हो गया ? पर फिर उस समय कुछ बनता नहीं है—कुछ हाथ-पल्ले पड़ता नहीं है। फिर एक विचित्र बात यह है कि एक बड़ी अजीब बात यह है कि कितना भी इन भोगों को भोग क्यों न लिया जाए, फिर भी मनुष्य का पेट इनसे भरता नहीं है,—मनुष्य का जी इनसे भरता नहीं है,—मनुष्य की तृष्णा इनसे शान्त होती नहीं है। मनुस्मृति २.९४ में जैसा कि कहा गया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगने शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥२.९४॥

काम कभी भी कामनाओं के उपभोग से शान्त नहीं होता, किन्तु घृत की आहुति देते रहने से जैसे अग्नि और अधिक भड़कती जाती है वैसे ही कामनाओं के उपभोग से काम और ज्यादा बढ़कता जाता है—वासनाएं और अधिक उद्‌बुद्ध होती जाती हैं। महाभारत में भी प्रसंगवश अ० ७५-४९ में यह श्लोक आया है। राजा ययाति को शुक्राचार्य ने जब शाप दिया तो वह बूढ़ा हो गया, परन्तु फिर जब शुक्राचार्य ने उस पर कृपालु होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा की तो वे पुनः युवा हो गए, जवान हो गए। और फिर उस युवा ययाति ने बहुत वर्षों तक संसार के इन भोगों को खूब भोगा। पर उन को खूब भोग-भोग कर भी अन्त में वह उपर्युक्त श्लोक कह कर आने वाले संसार को यह अनुभव दे जाता है कि–"मनुष्य कभी इन भोगों को भोग–भोग कर तृप्त नहीं हो सकता, किन्तु जितना-जितना भी वह इन भोगों को भोगता जाता है उतनी-उतनी उसकी भोगों को भोगने की कामना और बढ़ती जाती है, ऐसे जैसे कि अग्नि में जितनी भी घी की आहुति दी जाती है उतनी ही उतनी वह और बढ़ती जाती है। इसलिये नचिकेता यमाचार्य से कहता है कि–"हे यमाचार्य ! चाहे कितना भी लम्बे से लम्बा जीवन क्यों न किसी को आप दे देवें फिर भी वह लम्बे से लम्बा जीवन–वह सारे का सारा जीवन भी इन भोगों को भोगने के लिये मनुष्य को थोड़ा ही प्रतीत होगा-छोटा ही लगेगा। इसलिये जिन भोगों की यह दशा है–जिन खान-पान, वस्त्राभूषण, स्त्री-पुत्र, हाथी-घोड़े, रथ-यानों और इन नाच-गान, रंग-तमाशों की यह स्थिति है, वे सब आप को ही मुबारिक हों–वे सब आप ही के पास सदा बने रहें, मुझे उनकी इच्छा नहीं है। अतः मैं उन्हें नहीं चाहता।

हे यमाचार्य ! आप भली-भांति जानते ही हैं कि (न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः) धन से कभी आज तक कोई मनुष्य न तृप्त हुआ न होगा। जैसे रावण ने कितना भी सोना प्राप्त करके अपनी लंका को सोने से मढ़ क्यों न लिया हो, और सोने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका का राजा तक भी क्यों न बन गया हो, फिर भी वह कभी उस से सन्तुष्ट नहीं हुआ, तृप्त नहीं हुआ। सिकन्दर महान् ने ही युद्ध कर-करके कितना ही धन-वैभव क्यों न इकट्ठा कर लिया हो, पर फिर भी वह उस धन-वैभव से कभी तृप्त नहीं हुआ। जितना-जितना वह वढ़ता गया, उतनी-उतनी ही उसकी तृष्णा भी और बढ़ती ही रही। अतः इस धन-वैभव से किसी भी मनुष्य का तृप्त होना सम्भव ही नहीं। और फिर हम ने तो आप सरीखे महापुरुष के दर्शन पा लिये हैं, आप जैसे अमोघ वाणी के धनी आचार्य का सान्निध्य वा सम्पर्क पा लिया है, इसलिये हम धन-वैभव को भी पा ही लेंगे–सुख-सौभाग्यों को भी प्राप्त कर ही लेंगे, और जितना आप चाहेंगे उतना हम जी भी लेंगे। अब जब आप जितना हमें जीवन देंगे, उतना जीवन तो हम तभी ही जी सकेंगे जबकि आप हमें उस जीवन के लिये जीने के साधन धन-धान्य आदि देंगे। इसलिये जब वह सब कुछ आप स्वयं सहज ही हमें देंगे, तो उस के मांगने की फिर हमें क्या आवश्यकता है। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से किसी दूसरे वर के मांगने का औचित्य ही नहीं प्रतीत होता। अतः मेरा वरणीय वर तो वही आत्मविषयक प्रश्न ही है। आप उसे ही मुझे समझा कर कृतार्थ कीजिये।

इस प्रकार नचिकेता ने जब यह स्पष्ट कह दिया कि "मुझे तो वही वर चाहिये, उसके अतिरिक्त यह और सब कुछ नहीं चाहिये, तो उस से यमाचार्य उसके संसार से वैराग्य और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा के प्रति दृढ़ अनुराग को देखकर, उसको वास्तव में आत्म-बोध का सुपात्र जिज्ञासु समझ कर, उस पर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और उसकी प्रशंसा करते हुए उस ने उसे उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते
उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १.२.१. ॥

अन्वयार्थ :—(श्रेयः अन्यत्) श्रेय मार्ग और है (उत प्रेयः अन्यत् एव) और प्रेय मार्ग और ही है, (ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः) वे दोनों भिन्न-भिन्न अर्थों–प्रयोजनों वाले होते हुए पुरुष को–आत्मा को बान्धते हैं–अपनी ओर आकर्षित करते हैं। (तयोः श्रेयः आददानस्य साधु भवति) उन दोनों में से श्रेय को ग्रहण करने वाले का भला होता है–कल्याण होता है, और (यः उ प्रेयः वृणीते) जो प्रेय का वरण करता है, वह अपने उद्देश्य से गिर जाता है–अपने उद्देश्य को प्राप्त करने से वञ्चित रह जाता है।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ
सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।। १.२.२. ।।

अन्वयार्थ :—(श्रेय: च प्रेय: च मनुष्यम् एत:) 'श्रेय' और 'प्रेय'–ये दोनों मनुष्य को प्राप्त होते हैं–मनुष्य के पास आते हैं (धीर: तौ सम्परीत्य विविनक्ति) धीर बुद्धिमान् पुरुष उन दोनों को सम्यक् प्रकार से समझ कर पृथक्-पृथक् करता है–पृथक्-पृथक् उनके परिणामों पर विचार करता है। इसलिये (धीर: प्रेयस: श्रेय: हि अभिवृणोते) वह धीर प्रेय की अपेक्षा श्रेय का ही वरण करता है। पर जो (मन्द: योगक्षेमाद् प्रेय: वृणीते) मन्दबुद्धि पुरुष होता है, वह योग अर्थात्-सासांरिक सुख-सौभाग्यों के साधनों के प्राप्त करने और क्षेम अर्थात् उन सब की रक्षा करने की भावना से प्रेय का ही वरण करता है।

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामान्
अभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्याँ मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ।। १.२.३ ।।

अन्वयार्थः—(नचिकेतः ! सः त्वम् प्रियान् प्रियरूपान् च कामान् अभिध्यायन् अत्यस्राक्षीः) हे नचिकेता ! सो तू ने प्रिय तथा प्रियरूप अर्थात् हृदय को प्यारे और आँखों को भी प्यारे लगने वाले इन सुन्दर-सुन्दर भोगों को खूब सोच-विचार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग दिया है–छोड़ दिया है। (एतां वित्तमयीं सृङ्कां न अवाप्तः यस्यां बहवः मनुष्याः मज्जन्ति) हे नचिकेता! तू इस वित्तमयी शृंखला–बेड़ी में भी नहीं फंसा, जिसमें कि प्रायः बहुत से मनुष्य फंस जाते हैं—तू इस धन-वैभवमयी माला में नहीं मग्न हुआ–नहीं डूबा जिसमें कि प्रायः बहुत से मनुष्य मग्न हो जाते हैं–डूब जाते हैं।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या विद्येति ज्ञाता।
विद्याऽभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो
ऽलोलुपन्त ।। १.२.४. ।।

अन्वयार्थ—(एते दूरं विपरीते विषूचीः) ये दोनों एक दूसरे से दूर हैं, विपरीत हैं, उल्टे हैं, भिन्न-भिन्न परिणामों को प्राप्त कराने वाले हैं, (या अविद्या–विद्या च इति ज्ञाता) जो अविद्या और विद्या के नाम से विख्यात हैं। (नचिकेतसं विद्याभीप्सिनं मन्ये) तुझ नचिकेता को मैं विद्या का चाहने वाला मानता हूँ–श्रेय मार्ग का पथिक समझता हूँ। क्योंकि (त्वा बहवः कामाः न अलोलुपन्त) तुझको ये बहुत से भोग भी नहीं लुभा सके–नहीं मोहित कर सके, तुझको ये बहुविध कामनाएं भी अपनी ओर नहीं आकर्षित कर सकीं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीरा पण्डितम्मन्यमानाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ १.२.५. ॥

अन्वयार्थः—(अविद्यायाम्-अन्तरे वर्तमानाः) अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष आदि में पड़े हुए भी—भोग विलासों में फंसे हुए भी (स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः) अपने आप को बड़ा धीर—बुद्धिमान् और ज्ञानी-विद्वान् मानते हुए (दन्द्रम्यमाणाः मूढ़ाः परियन्ति) कुटिल रास्ते पर इधर-उधर भटकते हुए ये मूढ जन ऐसे ठोकरें खा रहे हैं (यथा अन्धेन एव नीयमानाः अन्धाः) जैसे अन्धे से लें जाए जाते हुए अन्धे—जैसे मूर्खों से नेतृत्व किये जाते हुए मूर्ख।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ १.२.२६. ॥

अन्वयार्थः—(वित्तमोहेन मूढ़ं प्रमाद्यन्तं बालं साम्परायः न प्रतिभाति) धन के मोह से मूढ़ बने हुए—धन के मोह में डूबे हुए प्रमादी बालबुद्धि पुरुष को परलोक नहीं नजर आता—इस संसार के सिवाय कुछ और दिखाई नहीं देता। वह तो यही समझता है कि(अयं लोकः, परः न अस्ति, इति मानी)यही लोक है, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा लोक नहीं है, ऐसा मानने वाला मनुष्य (पुनः पुनः मे वशम् आपद्यते) पुनः-पुनः मेरे[यमराज के]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वश में आता है। अर्थात् वह बार-बार मरता है, बार-बार पैदा होता है, और इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र पर ही सदा चढ़ा रहता है। उसे उससे छुटकारा मिलता नहीं।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्यलब्धा
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ १.२.७.॥

अन्वयार्थः—(बहुभिः श्रवणाय–अपि यः न लभ्यः) बहुतों को तो यह[आत्मज्ञान] सुनने को भी नहीं मिलता, अर्थात् बहुत से लोग तो इसके विषय में जिन्दगी भर में कुछ सुन ही नहीं पाते (बहवः शृण्वन्तः अपि यं न विद्युः) बहुत से व्यक्ति सुनते हुए भी जिसको जान नहीं पाते (अस्य वक्ता आश्चर्यः) इस आत्मज्ञान का वक्ता कोई आश्चर्यजनक ही होता है–कोई विरला ही होता है। (अस्य लब्धा कुशलः) इसको प्राप्त करने वाला भी कोई बड़ा ही कुशल–प्रवीण व्यक्ति होता है। (कुशलानुशिष्टः ज्ञाता आश्चर्यः) किसी कुशल ज्ञानी महापुरुष के द्वारा सुशिक्षित हुआ-हुआ इसको जानने वाला भी कोई विलक्षण ही पुरुष होता है।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः,
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान्
ह्यतर्क्यमणु प्रमाणात् ॥ १.२.८ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वयार्थः—(बहुधा चिन्त्यमानः एषः अवरेण नरेण प्रोक्त न सुविज्ञेयः) बहुत प्रकार से चिन्तन किया हुआ भी यह साधारण अज्ञानी गुरु से कहा गया–समझाया गया आत्मतत्त्व सुगमता से समझ में आने वाला नहीं है–सहज ही जहन में बैठने वाला नहीं है। (अनन्य-प्रोक्ते अत्र गतिः न अस्ति) किसी दूसरे विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष के प्रवचन के बिना–उपदेश के बिना इस विषय में मनुष्य की गति नहीं होती–इस विषय में साधक का प्रवेश नहीं होता। (हि अणुप्रमाणात् अणीयान्) क्योंकि यह आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण वाले आकाश आदि पदार्थों से भी बढ़कर सूक्ष्म है; अर्थात् अतिसूक्ष्म है। इसलिये वह (अतर्क्यम्)तर्क का बिषय नहीं है, तर्क से परे का विषय है। अर्थात् वह तर्क से नहीं वरन् अनुभव से समझ में आने वाला है।

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यावन्त्यापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ १.२.९ ॥

अन्वयार्थ —(प्रेष्ठ ! यां त्वम् आपः, एषा मतिः तर्केण न आपनेया) १हे प्रियतम शिष्य ! हे प्यारे नचिकेता ! जिस

१. अथवा हे प्यारे नचिकेता ! जिस सात्विक बुद्धि को तू ने उपलब्ध किया है, वह तर्क-वितर्क से हटाने योग्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि को तू ने प्राप्त किया है, ऐसी यह सात्विक निर्मल बुद्धि तर्क से नहीं प्राप्त की जा सकती। यह तो (अन्येन एव प्रोक्ता सुज्ञानाय) किसी दूसरे आत्मवित् विशिष्ट पुरुष द्वारा दिये गए उपदेश से ही मिल सकती है, और यह विशिष्ट ज्ञान के लिये ही होती है–विशेष रूपसे आत्मज्ञान के लिये ही होती है।(नचिकेत:! बत सत्यधृति: असि) हे नचिकेता ! तू सचमुच बड़े धैर्य वाला है, नि:सन्देह तू धैर्यपूर्वक सत्य की खोज करने वाला है। वास्तव में तू 'धृतिमान् है–सत्य की प्राप्ति के लिये निश्चल धारणा वाला है। इसलिये (त्वादृक् प्रष्टा न: भूयात्) तेरे जैसा पूछने वाला ही हमारे पास आए–तेरे जैसा धीर-वीर जिज्ञासु ही हमारे पास आये।

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवै: प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नचिकेतश्चिकेतो
ऽग्निरनित्यैर्द्रव्यै: प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १.२.१० ॥

अन्वयार्थ :—(अहं जानामि शेवधि: अनित्यम् इति) जानता हूँ कि यह धन-वैभव का जो कोश है, वह अनित्य है–अस्थिर है। और यह भी मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि(अध्रुवै: तत् ध्रुवं न हि प्राप्यते)इन अध्रुव पदार्थों से वह ध्रुव ब्रह्म नहीं प्राप्त किया जा सकता–इन अनित्य–अस्थिर, धन-वैभवों से वह स्थिर-नित्य प्रभु नहीं प्राप्त किया जा सकता। (तत: मया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचिकेत: अग्नि: चित:) इसलिये मैंने नाचिकेत अग्नि का चयन किया [इसलिये नहीं कि मुझे सांसारिक धन-वैभव वा स्त्री-पुत्र आदि की प्राप्ति हो, वरन् निष्काम भाव से यह सब कुछ मैंने किया] और तब (अनित्यैः द्रव्यैः नित्यं प्राप्तवान् अस्मि) उन अनित्य द्रव्यों से नित्य ब्रह्म को मैंने प्राप्त किया।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोमंमहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ १.२.११ ॥

अन्वयार्थः—(नचिकेतः! कामस्य आप्तिम्) हे नचिकेता तू ने कामनाओं की प्राप्ति को–अपनी सब इच्छाओं की पूर्ति को (जगतः प्रतिष्ठाम्) धन-वैभव आदि के कारण जगत् में मिलने वाली प्रतिष्ठा अर्थात् मान-सम्मान को (क्रतोः अनन्त्यम्) यज्ञ के अनन्त्य को अर्थात् कभी न समाप्त होने वाले कर्मकाण्ड को और उसके आधार पर मिलने वाले बहुविध फल को (अभयस्य पारम्) निर्भयता की पराकाष्ठा को (महत् स्तोमं) अपनी होने वाली महती स्तुति अर्थात् प्रशंसा को (उरुगायम्) बहुतों के द्वारा होने वाले आत्म सम्बन्धी जय-जयकार को–अर्थात् महती कीर्ति को और (प्रतिष्ठां दृष्ट्वा) सब तरह की प्रतिष्ठा को देखकर भी उन सब को (धृत्या अत्यस्राक्षीः) बड़े धैर्य से छोड़ दिया, अतः तू (धीरः) बड़ा धीर है–बुद्धिमान् है–विवेकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दुर्दर्शं गूढ़मनुप्रविष्ठं गुहाहितम्
गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा
धीरो हर्ष-शोकौ जहाति ॥ १.२.१२. ॥

अन्वयार्थः—(अध्यात्म—योगाधिगमेन) अध्यात्म योग के मार्ग से—योग-साधना से (तं दुदर्शं, गूढ़म्, अनुप्रविष्ठं, गुहाहित, गह्वरेष्ठं, पुराणं, देवं मत्वा धीरः हर्षशोकौ जहाति) उस बड़ी कठिनाई से देखने योग्य—साक्षात् करने योग्य, अत्यन्त गूढ़ अर्थात् इन्द्रियातीत, अनुप्रविष्ट अर्थात् सर्वान्तर्यामी-सर्वव्यापक, हृद्गुहा में स्थित, गह्वरों में—गूढ़ दुर्गम प्रदेशों में रहने वाले, पुरातन दिव्य पुरुष को—सनातन दिव्य—परमात्म देव को जानकर, धीर बुद्धिमान्—ज्ञानी जन फिर हर्ष शोक को छोड़ देता है। अर्थात् फिर अनुकूल प्राप्ति में न तो उसे हर्ष होता है और न ही इष्ट के वियोग में उसे शोक होता है।

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥ १.२.१३. ॥

अन्वयार्थः—(मर्त्यः एतत् श्रुत्वा संपरिगृह्य, प्रवृह्य) मनुष्य आत्म-परमात्म—विषयक उपदेश को सुनकर, इसका सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर इस पर प्रकृष्ट रूप से विचार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एतं धर्म्यम् अणुम् आप्य) इस धर्म के सार रूप सूक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त करके (स: मोदनीयं लब्ध्वा मोदते) वह आनन्द के परम स्रोत आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त कर आनन्दित हो जाता है (नचिकेतसं विवृतं सद्म मन्ये) नचिकेता जैसे साधक के प्रति ब्रह्म का यह घर खुला हुआ है, ऐसा मैं जानता हूँ। अब उसके लिये इस मार्ग में कोई भी रुकावट नहीं है। अत: वह अबाध गति से इस आनन्दधाम में प्रवेश पा सकता है।

उपर्युक्त श्लोकों में यमाचार्य ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा कि—"हे नचिकेता ! श्रेय मार्ग अलग है और प्रेय मार्ग अलग है। अर्थात् श्रेय का—निःश्रेयस का-देवयान का-निवृत्ति का—कल्याण का—सब प्रकार के दुःखों से छूट कर आनन्द-स्वरूप प्रभु को पाने का पथ पृथक् है और प्रेय का—अभ्युदय का-पितृयाण का—प्रवृत्ति का-सुख-शाँति का-सब प्रकार के सुख-सौभाग्यों, अर्थात् स्त्री-पुत्र, मकान-दुकान, जमीन-जायदाद, धन-धान्य, सोना-चान्दी, खाद्य-पेय, वस्त्र-आभूषण, स्नेह-सम्मान, यश-कीर्ति आदि इन सांसारिक वैभवों को पाने का पथ पृथक्। ये श्रेय और प्रेय—ये निःश्रेयस और अभ्युदय—ये कल्याण और सुख-शान्ति—ये प्रभु और प्रकृति—ये परलोक और इहलोक—ये अध्यात्म का आनन्द और इस संसार का सुख-सौभाग्य—ये योग और भोग—ये भीतर का रस और बाहर का रस—ये भीतर की अगाध शान्ति और बाहर की हलचल—ये भीतर का आनन्द और बाहर का प्यार—दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रयोजनों वाले-भिन्न-भिन्न परिणामों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले इस मनुष्य को—इस जीव को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं—अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। भोगों से—सांसारिक सुख-सौभाग्यों से प्रत्यक्ष और तत्काल ही सुख मिल जाता है, इस कारण उनका परिणाम सोचे-समझे बिना—सोचे-विचारे बिना ही प्राय: बहुत से मनुष्य प्रेय मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं—लौकिक सुख-सौभाग्यों के योग-क्षेम में लग जाते हैं। परन्तु कोई विरले ही ऐसे मनुष्य होते हैं जो स्वयं भी सब प्रकार से सजग होते हैं और प्रभु की महती कृपा के भी वे पात्र होते हैं। इसलिये वे सांसारिक भोग विलासों से मिलने वाले क्षणिक-सुखों और उनके परिणाम में मिलने वाले दु:खों के रहस्य को भली-भाँति जानते हैं, तभी तो वे इस प्रेय मार्ग से—सांसारिक भोग-विलासों के मार्ग से विरक्त होकर श्रेय मार्ग का ही वरण करते हैं—अध्यात्म मार्ग की ओर ही आकर्षित होते हैं। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में से जो श्रेय मार्ग का वरण कर लेता है—जो अध्यात्म मार्ग को अपना लेता है, और बड़ी लगन से उस पर चलने लगता है, तो ऐसे व्यक्ति का सब प्रकार से कल्याण होता है। वह तो फिर शनै:-शनै: सब प्रकार के दु:ख-दौर्भाग्यों से छूट कर आनन्द-स्वरूप प्रभु को पा लेता है। पर इसके विपरीत जो प्रेय मार्ग का वरण कर लेता है—जो सांसारिक भोग-विलासों में पड़ जाता है—जो इन सांसारिक पदार्थों के योग-क्षेम में प्रवृत्त हो जाता है, वह तो फिर अपने मानव जीवन के चरम लक्ष्य प्रभु प्राप्ति रूप मुख्य प्रयोजन से च्युत हो जाता है। इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये उसे फिर प्रभु का अनुपम प्यार और आशीर्वाद भी नहीं प्राप्त हो पाता–उसे फिर प्रभु का अनुपम आनन्द भी नहीं मिल पाता।

श्रेय और प्रेय–ये दोनों ही मनुष्य के सम्मुख आते हैं–ये विद्या और अविद्या–ये योग और भोग दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं। धीर-बुद्धिमान् जन इन दोनों पर अच्छी तरह से विचार कर उन का विवेचन करता है–उनके दूरगामी परिणामों पर विचार करता है। इसलिए वह धीर–बुद्धिमान् ज्ञानी विवेकी महापुरुष प्रेय की उपेक्षा कर श्रेय का वरण करता है, प्रवृत्ति मार्ग को छोड़ कर निवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर होता है–भोगों से ऊपर उठकर योग में प्रवृत्त हो जाता है। पर इसके विपरीत जो मन्दबुद्धि-कुन्दबुद्धि पुरुष है, वह योग-क्षेम की भावना से संसार के धन-वैभव को प्राप्त करने और फिर उसकी रक्षा की भावना से प्रेय-मार्ग का–प्रवृत्ति मार्ग का ही वरण करता है।

हे नचिकेता! मैं ने सब प्रकार से देख लिया है, मैंने अच्छी तरह से परीक्षा कर ली है, और यह समझ लिया है कि तुम बड़े ही धीर-बुद्धिमान् वैराग्य के धनी सच्चे-सुच्चे जिज्ञासु साधक हो। इस संसार में अपने को बहुत बड़ा विद्वान् समझदार बुद्धिमान् समझने वाले लोग भी इस धन-सम्पत्ति, रुपये-पैसे, सोने-चान्दी और जमीन–जायदाद के लोभ में पड़ जाते हैं–९९ निन्यानवे के फेर में फंस जाते हैं, और इन्हीं के एकत्र करने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित करने की चिन्ता में ही अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को बर्बाद कर देते हैं। पर हे नचिकेता ! धन्य है कि तू उस धन-वैभव के लोभ में नहीं पड़ा—तू उस धन—वैभव की दल—दल में नहीं धंसा—तू उस निन्यानवे के फेर में नहीं पड़ा—तूने उस धन—सम्पत्ति के योग—क्षेम में अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को नहीं खोया और तू सब प्रकार से उससे उभर आया। इतना ही नहीं मैंने तुम्हें हृदय और आंखों आदि को तृप्त करने वाले प्यारे—प्यारे पुत्र—पौत्रों का भी प्रलोभन दिया, रूप—लावण्य से चित्त को हरने वाली रमणीय स्त्रियों का भी लोभ दिया, उनसे उपलब्ध होने वाली सेवा-सुश्रूषा और ब्रह्मानन्द सहोदर प्यार का भी वर्णन किया, घूमने-फिरने के लिये हाथी-घोड़ों, रथ-यानों और दूध की नदी बहाने वाली प्यारी—प्यारी गौओं की भी चर्चा की, परन्तु हे नचिकेता ! तू उन सब सुख-सौभाग्यों में फंसा नहीं, तू उन सब गौओं-घोड़ों, रथ-यानों और हृदय को बलात् अपनी ओर आकर्षित करने वाले [1]स्त्री—पुत्र—पौत्रों में

---

१. इन स्त्री-पुत्र और धन-वैभवों में मनुष्य कैसे फंसते है इस सम्बन्ध में नारद मुनि की एक बड़ी ही शिक्षाप्रद आख्यायिका प्रसिद्ध है। नारद जी की युवावस्था ही थी जब कि वह श्रीकृष्ण जी के पास अध्यात्म ज्ञान की जिज्ञासा लेकर आये थे। श्रीकृष्ण जी उसे आत्मज्ञान का पात्र नहीं समझते थे। इसलिये उन्होंने उसे आत्म विषयक उपदेश नहीं दिया। परन्तु नारद जी नहीं माने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फंसा नहीं। तू ने सहज ही उन सब की उपेक्षा की–तू ने सहज ही उन सबको त्याग दिया। अतः तू सचमुच उस आत्मविद्या–अध्यात्मविद्या का अधिकारी है–पात्र है।

हे नचिकेता! ये दोनों मार्ग एक दूसरे से बहुत दूर हैं, एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं, उल्टे हैं, इसलिये वे दोनों भिन्न-भिन्न फलों को देने वाले हैं, जो अविद्या और विद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो श्रेय और प्रेय के नाम से प्रसिद्ध हैं-जो निःश्रेयस और अभ्युदय के नाम से विख्यात हैं–जो भोग और योग के नाम

और वह श्रीकृष्ण जी से हठ करने लगे कि वे उसे अवश्य उपदेश दें। एक दिन श्रीकृष्ण और नारद जी सैर करने निकल गये। मार्ग में कुछ ही फासले पर एक ग्राम दिखाई दिया। श्रीकृष्ण जी को प्यास लगी तो उन्होंने नारद जी से कहा—"मुझे प्यास लगी है, अतः जाओ इस गांव से पानी ले आओ। नारद जी पास वाले गांव से पानी लाने गया। वहाँ कुएं पर एक सुन्दर युवती जल भर रही थी। नारद जी ने पानी माँगा। उसने बड़े प्यार से उसे पानी दे दिया और वह अपने घर की ओर चल दी। नारद जी उसके रूप-लावण्य पर इतना मुग्ध हुआ कि श्रीकृष्ण जी के लिये पानी ले जाने के बजाये वह उस युवती के पीछे-पीछे हो लिया। युवती अभी अविवाहित ही थी। इस लिये नारद जी ने उसके पिता से प्रार्थना की कि वह अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दे। पिता ने स्वस्थ और सुयोग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जाने जाते हैं। अब जिसकी अविद्या में रुचि होती है-प्रेय मे प्रवृत्ति होती है-अभ्युदय में गति होती है-भोगों में आसक्ति होती है, वह विद्या के मार्ग पर आगे बढ़ नहीं सकता-वह श्रेय के मार्ग पर आगे चल नहीं सकता-वह निःश्रेयस के पथ पर अग्रसर हो नहीं सकता—वह योग मार्ग का सच्चा पथिक बन नहीं सकता। पर जिसकी विद्या में रुचि है—श्रेय में प्रवृत्ति है, निःश्रेयस में गति है-योग में श्रद्धा है, वह अविद्या-प्रेय-अभ्युदय अर्थात् भोगों को सदा दुःखरूप मानकर उनसे विरक्त ही रहता है। हे नचिकेता ! मैं तुम्हें विद्या का अभिलाषी समझता हूँ—योग मार्ग में हार्दिक रुचि रखने वाला समझता हूँ-कल्याण मार्ग का सच्चा पथिक समझता हूँ। क्योंकि कितने ही तुझको प्रलोभन दिये गये, फिर भी तू उन सब से डाँवाडोल नहीं हुआ—तू उन सबसे विचलित नहीं हुआ—तू उन सबसे डगमगाया नहीं।

जानकर अपनी बेटी का विवाह नारद जी से कर दिया। विवाह के उपरान्त नारद जी वहीं पर ही घर बनाकर रह गये। उनके तीन पुत्र हुए। जो बड़े ही प्यारे थे। उन के कारण घर में खूब चहल-पहल रहती थी। अतः नारद जी भी बड़े ही खुश थे। ग्राम में कुछ वर्षों के बाद बाढ़ आई। नारद जी अपनी स्त्री, बच्चों को साथ लेकर जब प्राणों की रक्षार्थ कहीं अन्यत्र जाने लगे, तो तब जल चहुँ ओर शनैः शनैः निरन्तर इतना बढ़ चुका था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में बहुत से लोग प्रायः ऐसे होते हैं जो अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष आदि में पड़े हुए भी और संसार की विषय-वासनाओं में फंसे हुए-हुए भी शास्त्र के दो चार वाक्यों का जानकर अपने आप को बड़े ही धीर-गम्भीर, ज्ञानी-विद्वान्-पण्डित मानते हुए टेढ़े-मेढ़े रास्तों से इधर-उधर भटकते हुए ऐसे ठोकरें खाते फिरते हैं जैसे कि अन्धों के नेतृत्व में-अन्धे इधर-उधर भटकते हुए—ठोकरें खाते हुए मारे-मारे फिरते हैं, और अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच नहीं पाते।

अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी एक-एक करके उसके तीनों पुत्र बह गये। अन्त में स्त्री भी हार कर जल के प्रवाह में प्रवाहित हो गई। नारद जी भी जैसे-तैसे अपनी जान बचाकर शनैः शनैः वहीं जा पहुँचे, जहाँ से कि वे श्री कृष्ण जी के लिए पानी लेने गाँव चले थे। वहाँ पहुँच कर तब उनको होश आया—तब उनको कहीं स्मरण आया कि वे किस उद्देश्य से गांव गये थे, और वहाँ जाकर किस चक्र में फंस गये। यही वह माया का चक्र है, जिस पर चढ़ा हुआ मानव अपने वास्तविक उद्देश्य को भूल जाता है। सांख्य-योग के अभ्यास से जिस आत्मा-परमात्मा का बोध प्राप्त करना होता है, उसको मनुष्य भूल जाता है। पर नचिकेता तो ऐसा निकला कि उसके सम्मुख अपना यह उद्देश्य बराबर बना रहा। इसलिये यम उस पर बहुत प्रसन्न हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वित्त के मोह से मूढ़ हो रहा है–जो धन-सम्पत्ति की दलदल में धंसा हुआ है–जो रुपये-पैसे के चक्र पर चढ़ा हुआ है–जो निन्यानवे के फेर में पड़ा हुआ है–सोने-चान्दी की चमक-दमक से जिस की आँखें चुन्धिया गयी हैं, ऐसे धन-वैभव में आसक्त और भोगविलासों में प्रसक्त, खेल-खिलौनों में मस्त रहने वाले अज्ञ–अल्पज्ञ–बाल बुद्धि पुरुष को साम्पराय अर्थात् परलोक नहीं नजर आता–इस संसार के धन-धान्य और भोग–विलास के अतिरिक्त उसे कुछ और नहीं दिखाई देता। वह तो बस यही समझता है कि–"यही दुनिया है, यही धन-वैभव और यही भोग-विलास है। इसलिये जितना भी अधिक इस जीवन में इसे खा-पी लिया जाए, इसे भोग-भाग लिया जाए, उतना ही अच्छा है। परलोक किस ने देखा है। वह तो एक कल्पना मात्र है, जिस के बारे में सोचने वाले को न तो आगे ही कुछ मिल पाता है और न ही वह इस संसारमें ही कुछ खा-पी और भोग-भाग पाता है।" ऐसा सोचने-विचारने वाला व्यक्ति पुनः पुनः बार-बार जन्मता और मरता रहता है, जायस्व-म्रियस्व के चक्र में पड़ कर नाना योनियों में धक्के खाता रहता है।

हे नचिकेता ! यह आत्मज्ञान कोई सामान्य बात नहीं है। संसार में बहुत से मनुष्यों को तो जीवन भर इस विषय में कुछ सुनने को ही नहीं मिलता। क्योंकि वे ऐसे वातावरण में रहते हैं जहाँ चौबीस घण्टे खाने-कमाने और भोग-विलासों की ही चर्चा रहती है। इसलिये उन के हृदय में कभी आत्मा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्माविषयक जिज्ञासा भी नहीं उठती। कहीं सौभाग्य से इस विषय की चर्चा हो भी जाए तो उन्हें अपने खाने-कमाने आदि के धन्धों से ही फुर्सत नहीं मिलती, जिससे वे उसे सुन सकें। अगर कभी सौभाग्य से कुछ लोगों में इस आत्मज्ञान को सुनने-समझने की इच्छा होती भी है तो उनके विषयाभिभूत मनों में उस की धारणा ही नहीं होती। या फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि होने के कारण उस को वे समझ ही नहीं पाते। जो तीक्ष्ण बुद्धि वाले पुरुष उसे कुछ समझ पाते हैं, तो उन में ऐसी योग्यता ही नहीं होती कि वे उस आत्मतत्त्व का यथार्थ वर्णन कर सकें-किसी दूसरे को समझा-बुझा सकें। इसलिये संसार में कोई बिरला ही उस का वक्ता होता है और कोई बिरला ही उस का जानकार होता है। जो उस का जानकार होता है, वह भी वह तब होता है जब कि उस को कोई कुशल-अनुभवी उपदेश देने वाला आचार्य मिल जाता है। अतः आत्मज्ञान भी एक विलक्षण वस्तु है। यह विषय सुनने को मिल जाए, यह भी एक बड़े भाग्य की बात है। सुनने पर यह समझ में आ जाए, यह उस से भी बढ़कर सौभाग्य की बात है। समझ कर यह विषय औरों को समझाया जा सके तो यह बहुत बड़ी बात है। दूसरे को समझाने से भी बड़ी बात यह है कि इस को स्वयम् प्राप्त किया जाए। प्राप्त यह तभी होता है जब उस व्यक्ति में ऐसी तीव्र जिज्ञासा हो, ऐसा दृढ़ सङ्कल्प हो कि जिस से टकरा-टकरा कर सभी प्रलोभन चूर-चूर हो जाएं। यह सब कुछ होने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर कोई ज्ञानी अनुभवी कुशल गुरु न मिले तो इस का जानना सम्भव नहीं होता ।

यह आत्मतत्त्व इतना सूक्ष्म है, इतना गहन है कि सामान्य ज्ञान वाला मनुष्य अगर इसे समझाता है तो उस के अनुसार बहुत प्रकार से मनन-चिन्तन और निदिध्यासन करने पर भी यह समझ में नहीं आता । जब तक कोई यथार्थ ज्ञानी–तत्त्व ज्ञानी महापुरुष इस को बतलाने वाला नहीं मिलता तब तक मनुष्य की–साधक की इस विषय में गति नहीं होती- इस विषय में प्रगति नहीं होती । यह इतना सूक्ष्म विषय है कि जब तक इस का समझाने वाला कोई विशेष व्यक्ति न हो तो कितना भी तर्क-वितर्क पूर्वक विचार क्यों न किया जाए, यह समझ में आता नहीं–यह जहन में बैठता नहीं । इसलिये इस का सुनना जरुरी है, पर सुनना भी उन से, जो इस के जानकार हों। तभी तो फिर तर्क पूर्वक यह गूढ़ विषय भी जहन में बठ जायेगा और साधक उस को हस्तामलकबत् जान सकेगा ।

हे प्रियतम साधक नचिकेता ! जिस सात्विक निर्मल बुद्धि को तू ने प्राप्त किया है, वही बुद्धि वास्तव में सुप्रसिद्ध आत्मज्ञान के लिये होती है। उसे मुझमें देखकर मुझे हार्दिक हर्ष हुआ है । ऐसी सात्विक निर्मल बुद्धि कभी तर्क-वितर्क से नहीं प्राप्त की जा सकती । यह तो तभी प्राप्त होती है जब कि परमेश्वर की अपार कृपा से किसी सत्पुरुष का सत्संग प्राप्त हो, और उनके द्वारा सतत् आत्मोपदेश को सुनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सौभाग्य प्राप्त हो। ऐसी सात्विक निर्मल बुद्धि के मिलते ही मनुष्य आत्मज्ञान के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये लग जाता है। सो नचिकेता ! तू धन्य है जो तुझ को ऐसी बुद्धि मिली है। सचमुच तू बड़े धैर्य वाला है–बड़े ही दृढ़ सङ्कल्प वाला है। तुझ जैसा जिज्ञासु शिष्य हमें मिले तो हमें बड़ी ही प्रसन्नता हो।

हे नचिकेता ! तू सब प्रकार से निष्काम है, यह मैंने अच्छी तरह देख लिया है। तुम्हारे सम्मुख मैं ने धन-धान्य को रखा, सोने-चान्दी को रखा, हाथी-घोड़ों को रखा, पुत्र-पौत्रों को रखा, चिरकाल तक का जीवन और चिरकाल तक की जीविका-रोजी-रोटी को रखा, सुन्दर-सुन्दर सजी-सजाई, रूप लावण्य से युक्त, रथ-यानों पर सवार, बाजे-गाजों के सहित रमणीय स्त्रियों को रखा; पर तू ने उन सब कामनाओं की प्राप्ति को, उन के आधार पर मिलने वाली प्रतिष्ठा को–उन के आधार पर मिलने वाले मान-सम्मान को, बड़े-बड़े यज्ञों को-कर्मकाण्डों को और उन यज्ञों–कर्मकाण्डों के आधार पर सतत् मिलने वाले सुन्दर-सुन्दर फलों को, निर्भयता-निडरता को अन्तिम सीमा को, स्थान-स्थान पर मिलने वाली स्तुति-प्रशंसा को, बहुतों के द्वारा मान-सम्मान में गाए जाने वाले स्वागत गीतों को, स्नेह-सम्मान में पढ़े जाने वाले सम्मान पत्रों को और सब प्रकार से सब हृदयों में वर्तमान रहने वाली प्रतिष्ठा को–दिव्य साख को, तू ने बड़े ही धैर्य से-बड़ी ही सहज स्थिर धारणा से त्याग दिया। इसलिये तू मेरी दृष्टि में बड़ा ही धीर है–बड़ा ही बुद्धिमान् है–बड़ा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकी है ।

इस में कोई सन्देह नहीं कि वह दुर्दर्श है, उस का दर्शन बड़ी ही कठिनाई से होता है-बड़ी ही मुश्किल से होता है। वह गूढ़ है । वह अत्यन्त सूक्ष्म है-इन्द्रियातीत है, इन्द्रियों से परे का विषय है। वह सब में अनुप्रविष्ट है-सब में घुसा हुआ है। वह सर्वान्तर्यामी है, वह हृदयाकाश में स्थित है। वह गह्वरेष्ठ है-संसार रूप गहन वन में स्थित है। वह दुर्गम प्रदेशों में स्थित है। वह पुरातन है-वह अनादि है-वह सनातन है; वह सब तरह के दिव्य गुणों से देदीप्यमान है, ऐसे दिव्य देव को-परम पिता परमात्मदेवको जानना कोई खाला जी का घर नहीं है-कोई सरल कार्य नहीं है पर अगर अध्यात्म योगकी रीतिसे कोई साधक उस को जानना चाहे, तो वह उस को जान सकता है। उस को जानने के उपरान्त फिर वह बड़ा हीं धीर हो जाता है-बड़ा ही बुद्धिमान् हो जाता है-बड़ा ही स्थिर हो जाता है-बड़ा ही निश्छल हो जाता है-बड़ा ही शान्त हो जाता है । ऐसा कि फिर उसे अपने इष्ट के संयोग में न तो कोई हर्ष होता है और इष्ट के वियोग में न ही कोई शोक होता है। हर्ष-शोक से तो फिर वह ऊपर ही उठ जाता है। तब वह सब को बड़ा प्यारा लगता है, अन्य सब लोगों से न्यारा लगता है,ऐसा कि जी करता है उसके चरण छूलें,और उस की चरण रज अपने मस्तक पर लगा लें। तब जी करता है कि उस के समीप ही बैठें रहें और निर्निमेष चक्षुओं से उस को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहारते ही रहें........।

इस आत्म विषयक उपदेश को जो सुन लेता है, सुनकर जो उसे ग्रहण कर लेता है, ग्रहण करके जो इस पर भली-भांति विचार कर लेता है, वह उस धर्म के सार रूप अत्यन्त सूक्ष्म परब्रह्म आनन्दघन परमेश्वर को प्राप्त कर निहाल हो जाता है–आनन्द विभोर हो जाता है। नचिकेता ऐसा ही उत्तम साधक है, इसलिये मैं ऐसा समझता हूँ कि इस के लिये अब आनन्द का धाम खुल गया है–मोक्ष का द्वार खुल गया है। इस को अब अपने अभीष्ट की प्राप्ति में तनिक भी बाधा नहीं है–जरा सा भी व्यवधान नहीं है।

नचिकेता पुनः यम से कहता है कि—

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद। १.२.१४।

अन्वयार्थ :—(धर्मात् अन्यत्र) धर्म अर्थात् कर्त्तव्य रूप आचरण से पृथक् (अधर्मात् अन्यत्र) अधर्म अर्थात् अकर्तव्य रूप आचरण से भी पृथक् (अस्मात् कृत अकृतात् अन्यत्र) इस कृत-कार्य और अकृत-कारण से भी पृथक् (भूतात् च भव्यात् च अन्यत्र) इस भूत और भविष्य से भी पृथक् (यत् तत् पश्यसि तत् वद) जिस उस तत्त्व को तू देखता है, तू उस का मुझ उपदेश कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे यमाचार्य ! धर्म और अधर्म से–कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य से जो अलग है, इस कार्य और कारण से भी जो परे है, भूत और भविष्य से अर्थात् बीते हुए समय से और आने वाले समय से भी जो पृथक् है, ऐसे सबसे भिन्न–सबसे अलग विराजमान जिस तत्त्व को तू देखता है, तू मुझे उसी का ही उपदेश कर–तू मुझे उसी को ही बता–तू मुझे उसी को ही समझा।

नचिकेता के इस प्रकार पूछने पर यमाचार्य कहता है कि–

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदँ: संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१.२.१५॥

अन्वयार्थ:—हे नचिकेता ! (सर्वे वेदा: यत् पदम्-आमनन्ति) समस्त वेद जिस पद का बारम्बार वर्णन करते हैं, (सर्वाणि तपाँसि च यत् वदन्ति) सारे तप जिसको बतलाते हैं,(यत् इच्छन्त: ब्रह्मचर्यं चरन्ति)जिसको चाहते हुए साधकजन असिधारा व्रत ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं (तत् पदं ते संग्रहेण ब्रवीमि) उस पद को तेरे लिये मैं संक्षेप से कहता हूँ, (ओम् इति-एतत्) वह 'ओम्' ऐसा है ।

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम् ।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥१.२.१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वयार्थः—(एतत्–हि–एव अक्षरं ब्रह्म) यह ही अक्षर ब्रह्म है–सब से बड़ा है (एतत् हि एव अक्षरं परम्) यह ही अक्षर परम् अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है (एतत् हि एव अक्षरं ज्ञात्वा) इस ही अक्षर–अविनाशी परब्रह्म परमेश्वर को जानकर (यः यत् इच्छति तस्य तत् [भवति]) जो जिसको चाहता है उस का वह हो जाता है–जो जिस पदार्थ को चाहता है, उसको वह मिल जाता है–उसको वह प्राप्त हो जाता है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१.२.१७॥

अन्वयार्थः—(एतत् आलम्बनं श्रेष्ठम्) यह ओङ्कार रूप आश्रय सर्वश्रेष्ठ है, (एतत् आलम्बनं परम्) यह आश्रय परम है–सर्वोपरि है–अन्तिम है (एतत् आलम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्म-लोके महीयते) इस आश्रय को पाकर मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त होता है–ब्रह्मज्ञानियों में पूज्य बन जाता है।

व्याख्या—(१-२-१५ से १-२-१७ तक)

सब वेद जिस पद का पुनः पुनः वर्णन करते हैं। अहिंसा सत्य अस्तेय आदि व्रत और शौच सन्तोष आदि नियम तथा अन्य भी जो जप-तप आदि जिसकी ओर संकेत करते हैं, जिसकी हृदय में तीव्र अभिलाषा लिये हुए साधक जन असिधारा व्रत-कठोर व्रत ब्रह्मचर्य का मन-वचन-और कर्म से पालन करते हैं, हे नचिकेता ! आज तुम्हें मैं बतलाता हूँ कि वह पद कौन सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है–वह प्रापणीय तत्त्व कौन सा है ? वह है ओ३म्–वह है सबको शान्ति और कान्ति देने वाला प्रापणीय प्रभु देव 'ओ३म्', जो अक्षर है–अविनाशी है, जो ब्रह्म है–सबसे बड़ा है। इतना बड़ा कि उससे बड़ा कोई और है ही नहीं। सचमुच उसको जो जान लेता है, फिर वह जो कुछ भी चाहता है, वही कुछ उसको मिल जाता है। अरे ! जब वही मिल जाता है, जिसके मिलने से कुछ मिलने को शेष ही नहीं रह जाता, तो फिर और कुछ चाहने की स्थिति ही कहाँ रह जाती है ? अतः वही अद्वितीय 'ओ३म्' जो सबसे न्यारा है और सबसे प्यारा है। न कोई इससे बढ़कर न्यारा है और न ही कोई इससे बढ़कर प्यारा है। इसलिए यह सब से श्रेष्ठ सहारा है, यह सबसे परम सहारा है। इस सर्वश्रेष्ठ सहारे को जिसने एक बार समझ लिया, फिर वह किसी दूसरे का सहारा लेता ही नहीं–फिर वह किसी दूसरे का द्वार खटखटाता ही नहीं। वह तो फिर इसी प्राणप्रिय प्रभुदेव 'ओ३म्' के सहारे पर ही इस संसार में निश्चल खड़ा रहता है, निश्छल खड़ा रहता है। इतना ही नहीं वह तो फिर संसार की सामान्य सभाओं में ही नहीं वरन् ब्रह्मज्ञानियों की सभा में भी चमकने लगता है–पुजने लगता है।

इस प्रकार ब्रह्म का वर्णन करने के बाद अब यमाचार्य नचिकेता के प्रश्न के अनुसार आत्मा के विषय में कहता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्
नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १.२.१८. ॥

अन्वयार्थः—(विपश्चित् न जायते म्रियते वा) यह चेतन आत्मा न उत्पन्न होता है, न ही मरता है; (न अयं कुतश्चित् न कश्चित् बभूव) न यह किसी से हुआ, न कोई इस से हुआ। अर्थात् न तो यह किसी का कार्य है और न यह किसी का कारण है। तात्पर्य यह है कि न यह किसी से उत्पन्न हुआ है और न कोई इससे उत्पन्न हुआ है। (अयम् अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः) यह अज–अजन्मा, नित्य, शाश्वत–अनादि–सदा रहने वाला और पुराना है। (शरीरे हन्यमाने न हन्यते) शरीर के हिंसित होने पर भी यह हिंसित नहीं होता–शरीर के मारे जाने जाने पर भी यह नहीं मरता–शरीर के नष्ट किये जाने पर भी यह नहीं नष्ट होता।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विज्ञानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥१.२.१९॥

अन्वयार्थः—(हन्ता चेत् हन्तुम् मन्यते) मारने वाला यदि आत्मा को मारने के लिए सोचता है और (हतः चेत् हतं मन्यते) मरने वाला यदि अपने को मरा हुआ समझता है, तो (तौ उभौ न विजानीतः) वे दोनों [आत्मा को] नहीं जानते हैं। क्योंकि (न अयं हन्ति न हन्यते)न यह आत्मा [किसी को] मारता है, और न [किसी से यह] मारा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमाचार्य आत्मा के स्वरूप का निरूपण कर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे कौन पा सकता है, यह बतलाते हैं।

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥१.२.२०॥

अन्वयार्थः—(अस्य जन्तोः गुहायां निहितः आत्मा) इस जीवात्मा की हृद गुहा में विराजमान परमात्मा (अणोः अणीयान् महतः महीयान्) अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है। अर्थात् सूक्ष्म जीव से सूक्ष्म और बड़े आकाशादि से भी बड़ा है, (तम् [अस्य] आत्मनः महिमानं धातुः प्रसादात् अक्रतुः—वीत-शोकः पश्यति) उस आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को और उस आत्मा-परमात्मा की महिमा को उसी जगद्विधाता सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की प्रसन्नता से—महती कृपा से ही कोई निष्काम कर्म करने वाला वीतशोक भक्त ही देख सकता है, या कोई संकल्प—विकल्परहित शोकविहीन ही कोई महापुरुष ही उसे देख सकता है।

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ १.२.२१ ॥

अन्वयार्थ :—(आसीनः दूरं व्रजति) वह जो परमात्मा बैठा हुआ भी दूर-दूर तक पहुँच जाता है, बैठने की तो बात छोड़ो वह तो (शयानः सर्वतः याति) सोता हुआ भी सर्वत्र जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जो वह सर्वदा सर्वत्र विराजमान रहता है (तं मदामदं [मदेनअमदं)] देवं मत्–अन्यः कः ज्ञातुम्–अर्हति) उस मद से भी अमद रहने वाले–उस ऐश्वर्य के मद से कभी उन्मत्त न होने वाले दिव्य देव को मेरे सिवा कौन जान सकता है ?

अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति १.२.२२॥

अन्वयार्थ :—(शरीरेषु अशरीरम्) शरीरों में अशरीर–साकार पदार्थों में निराकार रूप से वर्तमान (अनवस्थेषु-अवस्थितम्) अस्थिर पदार्थों में स्थिर रूप से विद्यमान (महान्तं विभुम्–आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति) महान् विभु–व्यापक सर्वान्तर्यामी परमात्मा को जानकर धीर–बुद्धिमान् जन फिर शोक नहीं करता ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥ १.२.२३ ॥

अन्वयार्थ :—(अयम् आत्मा न प्रवचनेन लभ्यः) यह आत्मा–परमपिता परमात्मा न तो प्रवचन से मिलता है, (न मेधया) न ही मेधा–बुद्धि से मिलता है, और (न बहुना श्रुतेन) न ही बहुत कुछ पढ़ने-सुनने से मिलता है। (यम् एव एषः वृणुते) जिस को ही यह वर लेता है (तेन लभ्यः) उसी से ही वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा लिया जाता है, अर्थात् वही उसको पा लेता है। (तस्य एषः आत्मा स्वां तनूं विवृणुते) उसके सम्मुख तो यह आत्मा–यह परब्रह्म परमात्मा स्वयं ही अपने स्वरूप को खोल कर रख देता है–अपने आप को प्रकट कर देता है–प्रकाशित कर देता है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।१.२.२९।।

अन्वयार्थः—(एनं दुश्चरितात् अविरतः न आप्नुयात्) इसको जो मनुष्य दुराचार से विरत नहीं हुआ–पृथक् नहीं हुआ, वह नहीं प्राप्त कर सकता, (अशान्तः न) इसको जो अशान्त है, वह नहीं प्राप्त कर सकता,(असमाहितः न)इसको जो असमाहित है–जो असमाधिस्थ है–जो असंयत चित्त हैं, वह भी नहीं प्राप्त कर सकता। (अशान्तमानसः वा अपि प्रज्ञानेन न) तृष्णा के वशीभूत हुआ–हुआ अशान्त मनोवृत्ति वाला जो मनुष्य है, वह भी केवल बुद्धिमात्र से–केवल बुद्धिबल से इसको प्राप्त नहीं कर सकता।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनम् ।
मृत्युर्यस्य उपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।१.२.२५

अन्वयार्थः—(यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चउभे ओदनं भवतः)जिस परमपिता परमात्मा के सम्मुख ब्रह्म बल और क्षत्रबल-ज्ञान का धनी ब्राह्मण वर्ग और बल का धनी क्षत्रिय वर्ग–ये दोनों ओदन हो जाते हैं–दोनों भात बन जाते हैं–हलका भोजन बन जाते हैं, (मृत्युः यस्य उपसेचनम्) सब संसार का संहार करने वाली मृत्यु–यम भी जिसका उपसेचन [भात पर सींचा जाने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृत अथवा भात के साथ मिलाकर खाए जानेवाला व्यञ्जन-कढी दाल शाक आदि] बन जाता है। अर्थात् जो सहज ही जगत् के मूर्धन्य ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ग, तथा संहार करने वाली मृत्यु को घृत-भात वा दाल-भात वा शाक-भात वा कढ़ी-भात की तरह ऐसे निगल जाता है–उसको पल भर में ऐसे समाप्त कर देता है कि फिर उसके सिवा कोई और उसकी सुध लेने वाला भी नहीं होता। हे नचिकेता! (स: यत्र)वह ब्रह्म जहाँ है और जैसा है(क: वेद) कौन जान सकता है ? और कौन उसके बारे में यह कह सकता है कि वह (इत्था) ऐसा है–इस प्रकार का है, और यहाँ है।

व्याख्या १.१,१८ से—हे नचिकेता ! यह चेतन आत्मा न पैदा होता है, न मरता है, न यह किसी उपादान कारण से उत्पन्न होता है, और न कोई कार्यान्तर इससे उत्पन्न होता है। अर्थात् न यह किसी का कार्य है और न यह किसी का कारण है। यह जीवात्मा तो अज है–अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत काल से चला आ रहा है, पुरातन है। यह तो ऐसा है कि शरीर को गीला भी कर दिया जाए तो भी यह नहीं गीला होता; शरीर को सुखा भी लिया जाए तो भी यह नहीं सूखता; शरीर को काट भी दिया जाए तो भी यह नहीं कटता; शरीर को मार भी दिया जाए तो भी यह नहीं मरता; शरीर को जला भी दिया जाए तो भी यह नहीं जलता। इस पर भी अगर कोई काटने वाला, मारने वाला, जलाने वाला यह समझे कि मैंने इस आत्मा को काट दिया है, मार दिया है, जला दिया है, राख की ढेरी बना दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और कटने वाला, मरने वाला, जलने वाला, राख की ढेरी बनने वाला यह समझे कि मैं कट गया हूँ, मर गया हूँ, जल गया हूँ, राख की ढेरी बन गया हूँ, तो ये दोनों आत्मा के विषय में अज्ञ हैं—अज्ञानी हैं—अबोध हैं—बालक हैं। क्योंकि आत्मा तो ऐसा है कि जो न काटता है, न कटता है, जो न मारता है न मरता है, जो न जलाता है न जलता है, जो न राख की ढेरी बनाता है न राख की ढेरी बनता है।

इस आत्मा—जीवात्मा की हृदयरूप गुफा में विद्यमान रहने वाला जो आत्मा-परमात्मा है, वह अणु से भी अणु है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है। जीवात्मा अणु है—सूक्ष्म है, परमात्मा अणु से भी अणु—सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। इसलिये सूक्ष्मतम परमात्मा इस सूक्ष्म जीवात्मा में भी विद्यमान होने से आत्मा का भी आत्मा, अर्थात् अन्तर्यामी परमात्मा कहलाता है। इस का यह अर्थ नहीं है कि वह अणु से अणु—सूक्ष्म से सूक्ष्म ही है, नहीं नहीं वह तो 'महतो महीमान्' भी है—महान् से महान् भी है- बड़े से बड़ा भी है। इतना बड़ा कि जिसमें सारा का सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है—सारी की सारी सृष्टि समायी हुई है। इस प्रकार वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से सब के भीतर विराजमान है और महतो महीयान्—महान् से महान्—बड़े से बड़ा होने से वह सब को अपने घेरे में लिये हुए है। अतः वह सर्वान्तिर्यामी कहलाता है। सब के भीतर-बाहर रहकर सबको अपने नियन्त्रण में रखता है—सबको अपने अनुशासन में रखता है। ऐसे आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वान्तर्यामी परमात्मा को तथा उस की महिमा को यदि कोई देख सकता है, यदि कोई अनुभव कर सकता है तो केवल निष्काम कर्म करने वाला शोकविहीन साधक ही देख सकता है-अनुभव कर सकता है। वह भी तब, जब उस धाता-जगद्विधाता परब्रह्म परमात्मा की उस पर कृपा हो जाए। कृपा भी वह उस पर करता है जो सुपात्र बन जाए। सुपात्र भी वह बनता है जो मन वचन कर्म से उस की आज्ञाओं का पालन करता है।

उस परमेश्वर की क्या कहें वह तो सर्वदा सर्वत्र व्यापक रूप से समासीन हुआ-हुआ-बैठा हुआ-हुआ होने से भी दूर-दूर तक गतिमान् है। वह विभु रूप से सर्वत्र सोता हुआ भी सबओर से गतिमान् है। तात्पर्य यह है कि यों वह शान्त रूप से बैठा हुआ है तब भी वह गति कर रहा है। यों वह शान्त रूप से सो रहा है, तो वह सोता हुआ भी जागरूक हुआ-हुआ सर्वत्र गति कर रहा है। उसी की गति से ही तो यह सब ब्रह्माण्ड गतिमान् हो रहा है, उसी की हर्कतसे ही तो इस जगत् में हर्कत और बर्कत हो रही है। यह बात पृथक् है कि उस की यह गति-उसकी यह हर्कत केवल ईक्षण मात्र ही होती है। उस सर्वव्यापक प्रभु के ईक्षण मात्र से इस ब्रह्माण्ड में ऐसे गति होती है-ऐसे हर्कत होती है, जैसे कि हमारे सोचने मात्र से हमारे भीतर हर्कत शुरु हो जाती है। जैसे हमने स्वतन्त्रा के लिये इच्छा की, तो उस के लिये हम में हर्कत आ गई। हर्कत आने से हम उसके लिये संघर्षरत हो गये। अन्त में हमारी उस हर्कत में बर्कत आ गई और हमें स्वतन्त्रता मिल गई। अब जैसे इच्छा मात्र से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे इस शरीर में हर्कत होती है, वैसे ही इस सकल ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विराजमान ब्रह्म में जब ईक्षण होता है तो इस विशाल ब्रह्माण्ड में तब हर्कत होने लगती है, और सृष्टि बनने लगती है। घास-पात, पेड़-पौधे सब उगने लगते हैं। नानाविध प्राणी भी धीरे-धीरे पैदा होने लगते हैं........। आगे चलकर तब एक सुन्दर जगत् तैयार हो जाता है। अतः यदि वह ब्रह्म गतिमान् न रहे, तो फिर इस जगत् में भी गति नहीं आ सकती। ऐसे उस महान् ऐश्वर्य के मद से भी सदा अमद रहने वाले अर्थात् अपनी किसी भी सामर्थ्य पर कभी उन्मत्त न होने वाले दिव्य ज्योति से जाज्वल्यमान् दिव्य देव को मेरे सिवा कौन जान सकता है—मुझ मृत्यु रूप अनन्य भक्त के अतिरिक्त कौन जान सकता है?

उस ब्रह्म की क्या कहें, वह तो ऐसा है कि जो शरीरों में रहता हुआ भी अशरीरी है—बिना शरीर वाला है; जो अस्थिर पदार्थों में भी स्थिर रूप से विद्यमान् है, ऐसे उस महान् सर्व-व्यापक अन्तर्यामी भगवान् को जानकर फिर कोई बुद्धिमान् शोक नहीं करता। अब जब आनन्दघन भगवान् को जिसने पा ही लिया हो फिर भला उसके पास शोक ठहर भी कैसे सकता है?

यह आत्मा—यह परमपिता परमात्मा बड़े-बड़े व्याख्यानों मे नहीं मिलता—बड़े-बड़े प्रवचनों से नहीं मिलता, बड़ी—बड़ी युक्तियों से—दलीलों से वह नहीं मिलता, बड़े-बड़े प्रमाणों से—शास्त्र के हवालों से वह नहीं मिलता। फिर भी अपने ज्ञान के अभिमान में आकर युक्ति और तर्क से विवेचन कर-कर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई समझना चाहता है–उसको कोई पाना चाहता है,–उसको कोई मिलना चाहता है तो भी यह नहीं मिलता; बहुत कुछ पढ़ने सुनते रहने से भी यह हाथ-पल्ले नहीं पड़ता, यह तो बस उसी को ही मिलता है जिसको यह वर लेता है। जिसको यह वर लेता है, उसके सम्मुख तो फिर यह अपने आप को खोल देता है। और ऐसा खोल देता है कि देखने वाला फिर उसे निर्निमेष ही देखने लगता है–और भीतर ही भीतर निहाल सा होने लगता है-अन्दर ही अन्दर खुशहाल सा होने लगता है–अन्दर ही अन्दर तृप्त-परितृप्त सा होने लगता है। यह तब ऐसा अनुभव करता है कि न जाने उसे क्या मिल गया हो।

यह ब्रह्म उसे नहीं वरता, उसके सम्मुख अपने स्वरूप को नहीं खोलता, यह उसको दर्शन नहीं देता, यह उसको प्राप्त नहीं होता, जो दुश्चरितों से–दुराचारों से–पतित आचरणों से अभी हटा नहीं, जिसका चित्त अभी शान्त नहीं हुआ, जिसकी चंचलता अभी गयी नहीं, जिसकी अस्थिरता अभी हटी नहीं, अर्थात् जो अभी समाहित नहीं हुआ–जो अभी समाधिस्थ नहीं हुआ-जिसकी चित्त वृत्ति बहिर्मुखी है, अर्थात् अभी वह अन्तर्मुखी हुई ही नहीं है। इसी कारण से जो सदा अशान्त ही बना रहता है–सदा उद्विघ्न सा ही बना रहता है, ऐसा व्यक्ति चाहे कितना भी बुद्धिमान् क्यों न हो-चाहे उसकी बुद्धि कितनी भी पैनी क्यों न हो, तो भी वह उस बुद्धि से उसको जान नहीं सकता–उससे उसको समझ नहीं सकता–उससे उसको पा नहीं सकता, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत यदि कोई दुराचारों से निवृत्त हो गया है–भ्रष्ट आचरणों से उभर आया है–भाग–विलासों से ऊपर उठकर निखर आया है, अर्थात जो संयमी बन गया है, जिसका मन अब शान्त रहने लगा है, जिसका चञ्चल चित्त भी अब कुछ स्थिर–एकाग्र रहने लगा है, जो अब धीरे-धीरे समाधिस्थ भी होने लगा है, जो अब पर्याप्त अन्तर्मुख हो गया है, जिसकी बुद्धि भी अब निखर गई है–ऋतम्भरा बन गई है, ऐसे प्रशान्त मन वाले साधक को तो वह वरता है–दर्शन देता है–निहाल करता है–खुशहाल करता है–तृप्त-परितृप्त करता है, अन्य को नहीं।

हे नचिकेता ! जिस आत्मा का–जिस सर्वान्तिर्यामी पर–मात्मा के ब्राह्मण वर्ग–सृजनात्मक बल और क्षत्रिय वर्ग–रक्षणात्मक बल–ये दोनों भात बन जाते हैं और मृत्यु अर्थात् मेरे जैसा ध्वंसनात्मक बल जिसका भात के साथ खाने को उपसेचन, घृत, दुग्ध, दाल, कढ़ी, शाक आदि बन जाता है। अर्थात् जिस भगवान् की भूख इतनी जबरदस्त है कि प्रलयावस्था में ये सृजनात्मक ब्राह्मणवर्ग और रक्षणात्मक क्षत्रिय वर्ग तथा इन दोनों का-ध्वस करनेवाला ध्वसनात्मक बल-मृत्यु तक भी उसके सम्मुख घृत-भात, दुग्ध-भात, दाल-भात, कढ़ी-भात व शाक-भात बन जाते हैं और वह एक दम इस सबको चट कर जाता है। ऐसे उस महान् परमात्मा के विषय में कौन ऐसा जान सकता है-कौन उसके विषय में ऐसा कह सकता है कि वह ऐसा है–इस प्रकार का है, और यहाँ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमाध्याय द्वितीय वल्ली में जीव–ब्रह्म का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया, और जीव के अपने को जान कर फिर परब्रह्म को जानने–प्राप्त करने का फल भी बतलाया गया। सार रूप में यह भी कहा गया कि प्रभु जिसको वर लेता है, वास्तव में वही उसको जान पाता है। पर वह तब किसी को वरता है जब कि वह उसकी राह पर चलकर अपने को दान्त-शान्त-प्रसन्न और एकाग्र कर लेता है। सो किस तरह से वह अपने को इस राह का पथिक बनाये, उन साधनों का वर्णन इस तृतीय वल्ली में किया गया है। प्रथम मन्त्र में पहिले जीव–ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध और निवास स्थान बतलाते हैं—

ऋतं पिवन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः
॥ १.३ १ ॥

अन्वयार्थः—(सुकृतस्य लोके)शुभकर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्य शरीर में (परमे परार्धे) परब्रह्म के उत्तम स्थान–हृदयाकाश में (गुहां प्रविष्टौ) बुद्धिरूप गुहा में प्रविष्ट हुए–हुए (ऋतपिवन्तौ) सत्य वा ज्ञान का पान करते हुए (छाया–आतपौ) छाया और धूप की तरह परस्पर विपरीत हैं, ऐसा (ब्रह्मविदः वदन्ति)ब्रह्मविद् ज्ञानी महापुरुष कहते हैं।(ये च त्रिणाचिकेताः) और जो त्रिणाचिकेत हैं अर्थात् जिन्हों ने तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन किया है, वे भी छाया और आतप का सा सम्बन्ध जीव और ब्रह्म में है, ऐसा कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥१.३.२॥

अन्वयार्थः—(यः ईजानानां सेतुः) जो याजकों का—यज्ञ करने वालों का सेतु हैं—भवसागर पार पहुँचाने वाला पुल है(यत् अक्षरं परं ब्रह्म) जो अविनाशी परब्रह्म है (यत् तितीर्षताम् अभयं पारम्) जो संसार सागर को तरना चाहने वालों के लिये भ्रम-रहित परला पार है—परला किनारा है, उस(नाचिकेतं शकेमहि) नाचिकेत अग्नि को हम जानने में समर्थ हों। अब उस परम ब्रह्म परमेश्वर को जिन साधनों से प्राप्त किया जा सकता है, उनका वर्णन करते हैं—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ १.३.३ ॥

अन्वयार्थः—हे नचिकेता ! (आत्मानं रथिनं विद्धि) तू आत्मा को रथी समझ—तू आत्मा को शरीर रूपी यान में बैठा हुआ रथ का स्वामी समझ (शरीरं रथम् एव तु) और शरीर को तू रथ समझ (बुद्धि तु सारथिं विद्धि) बुद्धि को तू सारथि जान-रथ चालक जान, तथा (मनः प्रग्रहम् एवच) मन को तू लगाम समझ।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥१.३.४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वयार्थ:-(इन्द्रियाणि हयान् आहु:)इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं और (विषयान् तेषु गोचरान्) रूप-रस गन्ध आदि विषयों को इन इन्द्रिय रूप घोड़ों के निमित्त विचरने के मार्ग कहते हैं, तथा (आत्मा–इन्द्रिय–मनोयुक्तं भोक्ता इति मनीषिण: आहु:) आत्मा इन्द्रिय और मन से युक्त जीव है, ऐसा मनीषि जन–ज्ञानी जन कहते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथे: ॥१.३.५॥

अन्वयार्थ:—(यस्तु अविज्ञानवान् भवति) जो तो विज्ञान रहित है–विवेक विहीन है–बुद्धि विहीन है, (अयुक्तेन मनसा सदा) और जो अयुक्त मन से सदा युक्त रहता है, –अर्थात् जो चञ्चल मन से सदा जुड़ा रहता है, (तस्य इन्द्रियाणि अवश्यानि) उसको इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रहती हैं (सारथे: दुष्टाश्वा: इव) ऐसे जैसे कि सारथि के दुष्ट घोड़ सारथि के वश में नहीं रहते।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे: ॥१.३.६॥

अन्वयार्थ:—(य: तु विज्ञानवान् भवति) जो तो विज्ञान वाला है–विवेकी है–बुद्धिमान् है और (युक्तेन मनसा सदा) और जो युक्तमन–स्थिर मन–वश में किये हुए मन से सदा युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है (तस्य इन्द्रियाणि वश्यानि) उसकी इन्द्रियाँ सदा वश में रहती हैं (सारथेः सद् अश्वाः इव) ऐसे जैसे कि सारथि के उत्तम घोड़े उसके वश में रहते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥१.३.७

अन्वयार्थः—(यः तु अविज्ञानवान् भवति) जो तो विज्ञान रहित होता है–विवेक हीन होता है–बुद्धिहीन होता है (अमनस्कः सदा अशुचिः) और जो अमनस्क–अमनस्वी–असंयमी और सदा अपवित्र रहता है, (सः तत् पदं न आप्नोति) वह उस परम पद को तो नहीं प्राप्त होता है, हाँ (संसारं च अधिगच्छति) संसार को वह अवश्य प्राप्त हो जाता है–जन्म-मरण के चक्र में वह जरूर बन्ध जाता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥१.३.८

अन्वयार्थः—(यः तू विज्ञानवान् भवति) जो तो विज्ञानवान् होता है—विवेकी होता है–बुद्धिमान् होता है, (समनस्कः सदा शुचिः) जो समनस्क–मनस्वी–संयमी और सदा पवित्र रहता है, (सः तु तत्पदम् आप्नोति) वह तो उस परम पद को पा लेता है यस्मात् भूयः न जायते) जिस से कि फिर वह उत्पन्न नहीं होता जन्म–मरण के चक्र में फिर वह नहीं घूमता। वह तो फिर जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१.३.९॥

अन्वयार्थ :—(यः तु विज्ञानसारथिः) जो तो विज्ञान सारथि है–जो तो विवेकरूप सारथि वाला है–जो बुद्धिरूप सारथि वाला है [तात्पर्य यह है कि जिस का सारथि विज्ञान है–विवेक है–बुद्धि है] और (मनः प्रग्रहवान् नरः) जो मनरूपी लगाम वाला मनुष्य है [अर्थात् मन रूपी लगाम जिस के हाथ में है](सः अध्वनः पारम् आप्नोति)वह तो फिर पथ के परले पार ही पहुँचता है, वह तो फिर अपनी मन्जिले मकसूद पर पहुँचता है (तत् विष्णोः परमं पदम्) और वही विष्णु का परम पद है–वही सर्वव्यापकष परमपिता परमेश्वर का परमधाम है–वही अपने प्रियतम प्राणप्रिय प्रभु की पुरी है ।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था: अर्थेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १.३.१०॥

अन्वयार्थ :—(इन्द्रियेभ्यः हि अर्थाः पराः) निश्चय ही इन्द्रियों से अर्थ परे हैं–निश्चय ही शरीर में विद्यमान इन इन्द्रियों से रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द रूप विषय सूक्ष्म हैं, (अर्थेभ्यः च मनः परम्) और इन रूप-रस-गन्ध आदि विषयों से मन सूक्ष्म है, (मनसः तु बुद्धिः परा) मन से तो बुद्धि सूक्ष्म है, तथा (बुद्धेः महान् आत्मा परः) बुद्धि से महान् आत्मा-व्यक्त प्रकृति सूक्ष्म है, अर्थात् बुद्धि का भी जो कारण महत्त्व है, वह सूक्ष्म है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥

१.३.११ ॥

अन्वयार्थः—(महतः अव्यक्तं परम्) महतत्त्व-व्यक्त प्रकृति से अव्यक्त प्रकृति–मूल प्रकृति–कारणरूप प्रकृति पर है–सूक्ष्म है (अव्यक्तात् पुरुषः परः) अव्यक्त प्रकृति से–मूल प्रकृति से–कारण रूप प्रकृति से [जिसमें सत्व रज तम साम्यावस्था में रहते है,–उससे] पुरुष [पिण्ड में रहने वाला आत्मा और ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण परम पिता परमात्मा] पर है–सूक्ष्म है–सूक्ष्मतम परमात्मा है। (पुरुषात् परं किञ्चित् न) इस पुरुष से परे कुछ और नहीं है–इस सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से सूक्ष्म कुछ और नहीं है। वही सब में समाया हुआ है-वही सबमें बसा हुआ है। (सा काष्ठा सा परा गतिः) वह सीमा है–वह अन्तिम अवधि है–वह आखिरी हद है। वह साधक के पुरुषार्थ का अन्तिम पड़ाव है, वही परमगति है–वही परम प्राप्ति है–वही अन्तिम उपलब्धि है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्‌यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥

१.३.१२ ॥

अन्वयार्थ :—(एषः सर्वेषु भूतेषु गूढ़ः आत्मा न प्रकाशते) यह सब भूतों में–सब प्राणियों और पदार्थों में छिपा हुआ–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाया हुआ सूक्ष्मतम आत्मा-परमात्मा प्रकट नहीं होता-दिखाई नहीं देता (तु) परन्तु (सूक्ष्मदर्शिभिः अग्र्यया सूक्ष्मया बुद्धया दृश्यते) सूक्ष्मदर्शी-तत्त्वज्ञानी-योगी महात्माओं द्वारा सतत् आगे-आगे ले जाने वाली तीक्ष्ण और सूक्ष्म एकाग्र बुद्धि से वह देखा जाता है ।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥
१.३.१३ ॥

अन्वयार्थ :—(प्राज्ञः वाङ्मनसी यच्छेत्) बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी वाणी और मन को नियन्त्रण में करे—वह वाणी और मन को रोके—वाणी और मन पर संयम करे अथवा (वाङ् मनसि यच्छेत्) वाणी को मन में नियन्त्रित करे अर्थात् वागादि इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटा कर मन में संयत करे जहाँ से कि स्फुरणा होती है। (तत् ज्ञाने आत्मनि नियच्छेत्) उस मन को फिर ज्ञानात्मा अर्थात् ज्ञान रूप बुद्धि में नियन्त्रित करे (ज्ञानं महति आत्मनि नियच्छेत्) ज्ञान रूप बुद्धि को—निश्चयात्मिका बुद्धि को महान् आत्मा-अपने शुद्ध आत्म तत्त्व—जीवात्मा में लगाये। (तत् शान्ते आत्मनि यच्छेत) उस आत्मा को फिर शान्तस्वरूप—आनन्दस्वरूप परमात्मा में लगावे। यही अभ्यास का क्रम है—यही साधना का क्रम है—यही प्राणप्रिय प्रभु को पाने का ढंग है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति
॥१.३.१४॥

अन्वयार्थ :—उस आत्मा के जानने के लिये हे मनुष्यो ! (उत्तिष्ठत जाग्रत वरान् प्राप्य निबोधत) उठो ! जागो ! और वरणीय श्रेष्ठ महांपुरुषों को प्राप्त कर उन से इस विषय में ज्ञान प्राप्त करो—अर्थात् उनकी शरण में जाकर उस परम पिता परमेश्वर का बोध प्राप्त करो। क्योंकि (क्षुरस्य निशिता दुरत्यया धारा) छुरे की तीक्ष्ण दुस्तर-धारा के सदृश (कवयः तत् पथः दुर्गं वदन्ति) कविजन-ज्ञानीजन उस तत्त्वज्ञान के पथ को दुर्गम अर्थात् अत्यन्त कठिन बतलाते हैं।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निच्चाय्य
तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ १.३.१५.॥

अन्वयार्थ :—(अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अरसम् अगन्धवत् च) शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित-रसरहित और गन्धरहित (तथा नित्यम् अव्ययं अनादि-अनन्तं महतः परं ध्रुवं यत्) तथा नित्य, अविनाशी, अनादि, अनन्त, महत् से भी सूक्ष्म ध्रुव-निश्चल जो ब्रह्म है (तत् निचाय्य मृत्युमुखात् प्रमुच्यते) उस को निश्चित रूप से जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है-जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥ १.३.१६॥

अन्वयार्थ :—(मृत्युप्रोक्तं सनातनं नाचिकेतम् उपाख्यानं उक्त्वा च श्रुत्वा मेधावी ब्रह्मलोके महीयते) मृत्यु अर्थात् यम द्वारा कहे हुए इस सनातन–सदा चलते रहने वाले नचिकेता सम्बन्धी–जीवात्मविषयक उपाख्यान अर्थात् अलङ्कार कह-कह कर और सुन-सुनकर मेधावी बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त होता है–ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयत: श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते
तदानन्त्याय कल्पते ॥ १.३.१७ ॥

आवयार्थ—(यः इमं परमं गुह्यं ब्रह्मसंसदि प्रयत:श्राद्ध काले वा श्रावयेत्) जो इस परम गुह्य–रहस्यमय तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी कथानक को विद्वत् सभा में–ब्रह्मज्ञानियों की सभा में अथवा किसी मरने वाले के सम्बन्ध में श्रद्धा प्रम एवं सहानुभूति पूर्वक [जब संसार के यथार्थ का बोध सा अनुभव करते हुए कुछ वैराग्य भाव से] लोग–इकट्ठे हुए हों, उस श्राद्धकाल अर्थात श्रद्धाकाल में [श्रद्धाञ्जलि समय में] सुनाता है(तत् आनन्त्याय कल्पते तत् आनन्त्याय कल्पते) वह अनन्त फल को करने में समर्थ हो जाता है–वह अनन्त फल को प्राप्त करने में सशक्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या—यमाचार्य नचिकेता को समझाते हुए कहते हैं कि—हे नचिकेता ! जो त्रिणाचिकेत है–जिन्होंने निष्काम भाव से तीन बार नाचिकेत अग्नि का सेवन किया है–माता-पिता और आचार्य का सान्निध्य प्राप्त किया है और उन की कृपा से ऋग्यजु और सामवेद के रहस्य को समझा है, अर्थात् ज्ञानपूर्वक निष्काम भाव से अपना जीवन यज्ञ चलाया है, वे ब्रह्मज्ञानी जन और जिन्होंने पञ्चाग्नियों को प्रज्वलित किया है–ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ पितृयज्ञ अतिथि यज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ का अनुष्ठान किया है, अर्थात् सफलतापूर्वक जिन्होंने कर्म काण्ड का सम्पादन किया है, वे आस्तिक जन भी अर्थात् ये दोनों ही बतलाते हैं कि शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप उपलब्ध हुए इस मानव चोले में स्थित हृदय प्रदेश में जीव और ब्रह्म प्रविष्ट हुए हुए सत्य-ज्ञान का पान करते हुए–यथार्थ ज्ञान का पान करते हुए, छाया और धूप की तरह दोनों भिन्न-भिन्न रूप में विराजमान हैं। जो अपने ज्ञान के अनुसार संसार रूप रस का पान करता है वह जीव है, छाया है–अल्पज्ञ है, और जो अपने विलक्षण ज्ञान के अनुसार केवल द्रष्टा–साक्षी हो कर विराजमान रहता है वह धूप है, प्रकाश है, सर्वज्ञ है। अर्थात् जीवात्मा छाया है-छाया सम अल्पप्रकाश है–अल्पज्ञ है, और परमात्मा धूप है–सूर्य के समान पूर्ण प्रकाश है–प्रकाशस्वरूप है–सर्वज्ञ है।

जो अग्नि याजकों का–यज्ञ करने वालों का–कर्मकाण्डियों का सेतु है–पुल है–भव सागर तैर कर परली पार पहुँचने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साधन है। पर कब ? जब कि वह सब निष्काम भाव से किया जाए। जो संसार सागर से पार उतरना चाहते हैं, जो अभयपद परब्रह्म परमेश्वर को पाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस कर्मकाण्ड को निष्काम भाव से करते हुए इस भवसागर को तैर कर नाचिकेताग्नि अर्थात् ज्ञानाग्नि में–अपने हृदय में अवशिष्ट संस्कारों को भी दग्ध कर दें।

अब प्रभु को-वरब्रह्म को पाने के साधनों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

हे नचिकेता ! भगवान् ने मनुष्य को शरीर रूपी सुन्दर रथ प्रदान किया। बुद्धि को उसमें सारथि–कोचवान बनाया, मन को लगाम बनाकर बुद्धि रूपी सारथि–साईस के हाथों में उसे सौंप दिया। इन्द्रियों को अश्व अर्थात् घोड़े बनाकर उस रथ में जोड़ दिया। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों को मार्ग बनाया, जिन पर कि ये घोड़े चलते हैं। यह सब कुछ बनाकर जीवात्मा को उस रथ का रथी-स्वामी बनाकर उस रथ पर बैठा दिया। यह सब बनाकर अथर्व वेद के शब्दों में वह ब्रह्म बोला कि—"आरोह–इमम्–अमृतं–सुखं रथम्। अथर्व ८.१.१६।" हे जीवात्मन् ! तू इस सुख और अमृत को देने वाले रमणीय रथ पर चढ़ जा–तू इस 'ख' इन्द्रियों को इतना अच्छा बना कि तुझे संसार में सदा सुख ही मिले और इस शरीर में बैठ कर ऐसी साधना कर कि तुझे अमृत मोक्ष का आनन्द भी मिले। अर्थात् मैं ने तुझे वह रमणीय रथ-यान दिया है जिसमें तू जहाँ संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अच्छी प्रकार से विचार कर सांसारिक सुख-सौभाग्य को भोग सकता है–अभ्युदय को प्राप्त कर सकता है, वहाँ तू साधना के ऊँचे पथ पर अग्रसर होकर भीतर का आनन्द भी प्राप्त कर सकता है—निःश्रेयस भी प्राप्त कर सकता है।

अब जैसे इस सांसारिक रथ-यान का कोई रथी-सवार समझदार है, और उसका सारथि–साईस–कोचवान भी उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है, लगाम भी उस सारथि–साईस के हाथों में है, जिससे कि बन्धे हुए घोड़े उसके संकेतों पर–इशारों पर चलते हैं। अश्व-घोड़े भी जिस पथ पर चलते हैं वे भी बहुत अच्छी तरह उद्दिष्ट स्थान पर ले जाने वाले हैं, तो ऐसा रथी–रथ का स्वामी अवश्यमेव अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचता है। वैसे ही इस शरीर रूपी रथ-यान का जो आत्मा रथी है–सवार है, वह यदि सावधान है–सजग है, बुद्धि रूपी सारथि–साईस–कोचवान भी उसकी आज्ञानुसार चलता है, मन रूपी लगाम भी जिसके हाथों में दृढ़ता से पकड़ी हुई है, जिससे कि इन्द्रिय रूपी अश्व-घोड़े बन्धे हुए हैं, जो सारथि–साईस–कोचवान् के संकेतों पर ही–इशारों पर ही इधर वा उधर चलते हैं, तो ऐसा रथ ही उस रथी–आत्मा को अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करा सकता है–उसे सुख-शान्ति की प्राप्ति करा सकता है। इस प्रकार रथी-आत्मा जब शरीर इन्द्रिय और मन के साथ युक्त होता है-इससे मिलकर जब कार्य करता है, तब वह भोक्ता भोगने वाला कहलाता है। अब जो रथी-सवार मनुष्य अवि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानवान् है–अविवेकी है–बुद्धिरहित है, अर्थात् जिसका सारथि-साईस–कोचवान विज्ञान नहीं–विवेक नहीं–बुद्धि नहीं, और जो अयुक्त मन से सदा युक्त रहता है–अनेकाग्र–चञ्चल मन से सदा जुड़ा रहता है, उसकी इन्द्रियाँ फिर उसके वश में नहीं रहती हैं-उसके वश से बाहर हो जाती हैं। ऐसे, जैसे कि किसी सारथिके दुष्ट घोड़े उसके वश में नहीं रहते–उसके वश से बाहर हो जाते हैं। इस प्रकार वे दुष्ट उन्मत्त उच्छृखंल इन्द्रिय रूपी घोड़े उस विवेक-बुद्धिरूप सारथि से विहीन हुए हुए मन रूपी लगाम के सहारे सम्पूर्ण रथ को ही अपने वश में कर लेते हैं और परिणाम स्वरूप रथी एवं सारथि रहित उस रथ को ही लिये हुए गहरे गर्त में जा गिरते हैं। विवेक-बुद्धि के नियन्त्रण से रहित इन्द्रियाँ ठीक वैसे ही उन्मत्त और उच्छृखल होती जाती हैं जैसे कि एक असावधान सारथि के घोड़े। परन्तु जो तो विज्ञानवान होता है–विवेकी होना है-बुद्धिमान् होता है,अर्थात् जिसका सारथि विज्ञान-विवेक-बुद्धि होता है, जो युक्त मन से–स्थिर मन से–संयत मन से–वश में किये हुए मन से सदा युक्त रहता है–सदा जुडा हुआ रहता है, उस की इन्द्रियाँ सदा वश में रहती हैं, जैसे कि सावधान सारथि के अच्छे घोड़े उस के वश में होते हैं। इस प्रकार जिस रथी–सवार आत्मा का सारथि–साईस–कोचवान् विज्ञान होता है–विवेक होता है–बुद्धि होती है और मन रूपी लगाम भी जिस की सदा कसी हुई रहती है–सदा वश में रहती है–सदा नियन्त्रण–कन्ट्रोल में रहती है, उसी की ही इन्द्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस के पूर्ण नियन्त्रण में रहती हैं जैसे कि सावधान–दक्ष सारथि के वश में उस के अच्छे घोड़े रहते हैं। तब यही विवेकरूप-बुद्धि रूप दक्ष सारथि के द्वारा वश में किये हुए मनरूपी लगाम से बन्धे हुए–कसे हुए इन्द्रिय रूप अश्व ही अपने निर्दिष्ट मार्ग पर सतत् अग्रसर होते हुए रथी मनुष्य को–जवार आत्मा को अपने लक्ष्य पर पहुँचा देते हैं।

पर जो अविज्ञानवान् होता है–अज्ञानी होता है-अमनस्क होता है-अमनस्वी होता है, सदा अशुचि रहता है-सदा अपवित्र रहता है, अर्थात् जो विज्ञान विहीन होता है–विवेकहीन होता है–बुद्धि-हीन होता है, मन जिसका सदा चंचल रहता है-चलायमान रहता है, आचरण भी जिसका सदा अपवित्र रहता है-व्यवहार भी जिस का सदा दूषित रहता है, ऐसा व्यक्ति कभी भी उस परमपद को नहीं प्राप्त कर सकता–वह उस प्राणप्रिय प्रभु देव को नहीं प्राप्त कर सकता। वह तो फिर संसार को प्राप्त होता है–जन्म-मरण के चक्र में फंसकर पुनः पुनः संसार में जन्मता है और मरता है, मरता है और जन्मता है……। यह सिलसिला उस का यों ही चलता ही रहता है।

पर इस के विपरीत जो विज्ञानवान होता है–विवेकी होता है–बुद्धिमान् होता है–समझदार होता है, मनस्वी होता है–संयमी होता है–नियन्त्रित मन वाला होता है–निरुद्ध चित्त वृत्ति वाला होता है, और सदा पवित्र रहता है–आचार व्यवहार जिस का सदा निर्मल-निश्छल रहता है–सदा सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार से उत्तम रहता है। वह तो फिर उस परम पद को पा लेता है—जिस से कि फिर उस को लौटकर नहीं आना पड़ता है, जिस से कि फिर उसको जन्म नहीं लेना पड़ता है। अर्थात् फिर उस को जन्म-मरण के चक्र में नहीं बन्धना पड़ता।१

अब जो विज्ञान सारथि है जिसका सारथि-साईस-कोचवान विज्ञान है—विवेक है—बुद्धि है। मनरूपी लगाम जिसके हाथ में सावधानी एवं दृढ़ता से पकड़ी हुई है, वह रथी—वही सवार—वही साधक आत्मा इस संसार रूप पथ को पार कर लेता है, और सर्वव्यापक परम पिता परमेश्वर के परम धाम—मोक्ष धाम को प्राप्तकर सदाके लिए कृतकृत्य हो जाता है, पूर्ण रूपसे शान्त और तृप्त हो जाता है।

आगे यमाचार्य उस परम पद की पराकाष्ठा बतलाते हैं-

इस शरीर में इन्द्रियों से अर्थ परे हैं—इन इन्द्रियों से रूप रस गन्ध स्पर्श आदि विषय सूक्ष्म हैं। इन रूप रस गन्ध आदि विषयों से मन सूक्ष्म है। मन से सूक्ष्म बुद्धि है। बुद्धि से भी सूक्ष्म है महान् आत्मा—महतत्त्व—व्यक्त प्रकृति, जो बुद्धि का भी उपादान कारण है। इस महतत्त्व—व्यक्त प्रकृति से परे है—सूक्ष्म है—अव्यक्त प्रकृति—मूल प्रकृति—कारण रूप प्रकृति। इस अव्यक्त सूक्ष्म प्रकृति से पुरुष सूक्ष्म है—सर्वत्र परिपूर्ण परमे-

---

१. बहुत लम्बे समय के बाद जब उसका मुक्ति का समय समाप्त हो जाता है तब कहीं वह इस जगत में आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वर सूक्ष्म है। पर इस पुरुष से ऊपर कोई और नहीं है–कोई और बढ़कर सूक्ष्म नहीं है। बस वह काष्ठा है–सीमा है–हद है-अन्तिम किनारा है–आखिरी छोर है। यही गति है–यही परम-गति है। यही प्राप्ति है–यही परम प्राप्ति है। यहीं पर आकर साधक के पुरुषार्थ का अन्त होता है।

यह अत्यन्त सूक्ष्म पुरुष–यह परम सूक्ष्म पुरुष परमात्मा इन सब भूतों में-सब प्राणियोमें व्याप्त होनेपर-छिपा हुआ होनेपर भी स्थूल दृष्टि से-इस बाह्य दृष्टि से वह दिखाई नहीं देता है, परन्तु यदि कोई सूक्ष्मदर्शी–तत्त्वदर्शी चाहें तो वे उसे देख भी सकते हैं जब कि वे योग साधना के द्वारा अपनी बुद्धि को सूक्ष्म कर लेते हैं और तीक्ष्ण कर लेते हैं–पैनी कर लेते हैं। ऐसी साधना के मार्ग में सतत् आगे ही आगे ले जाने वाली सूक्ष्म एवं पैनी आन्तरिक दृष्टि से उसका दर्शन हो सकता है–साक्षात् अनुभव किया जा सकता है।

परमात्मा के ध्यान की विधि बताते हुए यम कहते हैं–

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये–साधक को चाहिए कि वह अपनी वाणी को मन में नियन्त्रित करे–स्थिर करे, उस मन को ज्ञान-आत्मा अर्थात् ज्ञान रूप बुद्धि में नियन्त्रित करे, उस ज्ञानरूप बुद्धि को महान् आत्मा अर्थात् बुद्धि का भी जो कारण महतत्त्व है,उसमें स्थिर करे[अथवा उस बुद्धि को महान् आत्म–तत्त्व में अर्थात् अपने आप में स्थिर करे]और फिर उस महतत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को [अथवा अपने आत्मतत्त्व को] उस प्रशान्त आत्मा–शान्त-स्वरूप परमपिता परमात्मा में स्थिर करे।

यही वह राह है जिस पर चलने वाला राहगीर अपनी मञ्जिल पर पहुँच जाता है, यही है वह पथ जिस पर चलने से साधक की वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है और तब उसका आत्मा बाहर का कार्य बन्द करके आत्मसाक्षात्कार में लग जाता है।

हे मनुष्यो ! हे मुमुक्षु जनो ! उठो ! जागो! सावधान हो जाओ, और वरणीय उत्तम महापुरुषों की शरण में जाकर उनसे इस विषय में ज्ञान प्राप्त करो। तात्पर्य यह है कि तुम इस दुर्लभ मानव चोले में आकर निद्रा-तन्द्रा और भोग-विलासों में अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को मत खोओ। जीवन थोड़ा है, सौभाग्य से यदि यह शरीर सौ वर्ष चल भी जाए तो भी भर्तृहरि जी के शब्दों में इसका आधा भाग ५० वर्ष तो रात्रियों में ही व्यतीत हो जाता है, और उस आधे का आधा अर्थात् पच्चीस वर्ष बचपन और बुढ़ापेमें ही व्यतीत हो जाता है। बालकपन में मनुष्य का जीवन खेल-कूद में यों ही निकल जाता है और बुढ़ापे में वैसे ही मनुष्य के शरीर की चूल्हें ढीली हो जाती हैं, तब तो मनुष्य के कभी कान में दर्द रहता है, तो कभी दाँत में, कभी पेट में दर्द रहता है तो कभी सिर में, मनुष्य को कभी खाँसी है तो कभी जुकाम है, कभी वह सर्दी के मारे ठिठुर रहा है तो कभी वह गर्मी के कारण परेशान हो रहा है। कभी वह आसन मार कर बैठता है तो उसकी टाँगे दुःखती हैं, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे अब बैठा ही नहीं जाता, कभी वह स्वाध्याय करता है तो उसकी आँखों में पानी आने लग जाता है या फिर धुँधला-धुँधला दीखता है वा काला-सफेद मोतिया ही उसे पढ़ने नहीं देता। वहीं बैठ के यदि वह कुछ सुनना चाहता है तो कान बहरे होने से अब उसे सुनना ही मुश्किल हो गया है, कभी वह माला हाथ में लेता है तो भी हाथ काँपने लगते हैं। क्या करे और क्या न करे, यह अब उसकी समझ में नहीं आता। क्योंकि जीवन की अब शाम हो चुकी है, यमराज के सभी सन्देश अब आ चुके हैं। दाँत गिर गये है, कान बहरे हो गये है, आंखो से अब कुछ दिखाई नहीं देता है, त्वचा अब ढीली पड़ गई है, बाल भी बर्फ की तरह अब सफेद पड़ गये हैं, शक्ल और अक्ल भी अब जवाब देने लगी है, बस अब तो यमराज आने वाला है। बोलो ऐसे समय में फिर क्या होगा जागने से और सावधान होने से? अतः जागो तो जवानी में ही जागो, उठो तो जवानी मे ही उठो, सावधान होओ तो जवानी में ही सावधान होओ। मनुजी के शब्दों में यदि धार्मिक भी बनना है तो "युवैव धर्मशीलः स्यात्" जवानी में ही धार्मिक बन, यदि अपने जीवन के अन्तिम ध्येय के प्रति सजग होना है तो जवानी मे ही सजग हो जाओ–सावधान हो जाओ, नहीं तो बुढ़ापे में तो जागना और सावधान होना तो ऐसा है जैसे भवन में आग लगने पर पानी के लिये कुआँ खोदना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर १भर्तृहरि जी के अनुसार तो सौ वर्षों में से पचास रातों में गए, पचास में से भी पच्चीस बचपन के खेल-कूद में और बुढ़ापे के रोने-धोने में गए। शेष बचे पच्चीस वर्ष उम्र में से भी पर्याप्त नोकरी-चाकरी में, कमाने-खाने में, पहनने-ओढ़ने में, मिलने-जुलने में, देने-लेने में, कहीं आने-जाने में, गिले-शिक्वे में, हास-परिहास में, आए-गए की सेवा-शुश्रूषा आदि में वा व्याधि-वियोग आदि दु:खों में समाप्त हो जाते है। शेष रहा

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं, रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयो: ॥
शेषं व्याधिवियोग दु:खसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरङ्ग चञ्चलतरे सौख्यं कुत: प्राणिनाम् ॥

शतायुर्वैपुरुष: के अनुसार मनुष्य की आयु १०० वर्ष है। उसका आधा भाग अर्थात् ५० वर्ष तो सोने में ही चले जाते हैं। उसी आधे का आधा भाग अर्थात् २५ वर्ष का समय बाल्य एवं वृद्धावस्था में व्यतीत हो जाता है। शेष २५ वर्ष का समय व्याधि वियोग आदि के दु:खों और आजीविका के लिए नौकरी-चाकरी वा प्राणियों की सेवा में व्यतीत हो जाती है। अत: जल की तरङ्ग के समान चञ्चल जीवन में प्राणियों को सुख-शान्ति और चैन कहाँ? सत्संग-स्वाध्याय-सन्ध्या-संयम और साधना कहाँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा-बहुत दस-बारह वर्ष का जो समय, उसी में जो कुछ तुम करलो-कर लो,उसी में तुम जो कुछ बन लो-बन लो,उसी में तुम जो कुछ जप-तप-संयम-साधना आदि कर के अपने जीवनोद्देश्य की ओर आगे बढ़ लो–बढ़ लो, नहीं तो जरा सी गफलत की–जरा सी असावधानी की,तो समझो, वह समय भी पञ्जाबी की कहावत के अनुसार मिट्टी-स्वाह हो जायेगा, राख-मिट्टी हो जायेगा–व्यर्थ ही चला जायेगा। इसलिये कठोपनिषद् का ऋषि सबको सावधान करने के लिये पुकार-पुकार कर कह रहा है कि-'हे मनुष्यो ! हे मानव चोले में सौभाग्यवश पधारे हुए प्रिय मानवो ! तुम उठो, जागो और सावधान हो जाओ, जवानी मस्तानी होती है–दीवानी होती है, कहीं इस में जरा सी भी गफलत की–असावधानी की, तो फिर निद्रा और तन्द्रा, प्रमाद और आलस्य एवं भोग और विलास में ही वह ऐसे निकल जायेगी कि तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। और जब कभी तुम्हें पता चलेगा भी–जब कभी तुम जागोगे भी–जब कभी तुम सावधान होगे भी तो फिर लाख प्रयत्न करने पर भी यह जवानी तुम्हारे हाथ नहीं आयेगी। अतः उपनिषदों में-कठ ऋषि के शब्दों में–वैवस्वत यम के शब्दों में—उठो, जागो, गफलत की नींद त्यागो, और स्व तरहसे सावधान और सजग हो जाओ। सावधान और सजग होकर तुम उन वरणीय श्रेष्ठ महापुरुषों की ओर जाओ और उन के द्वार खटखटाओ। उन्हीं की शरण में श्रद्धापूर्वक आसन मार के बैठो। प्रभु की कृपा रही तो वे वरणीय महापुरुष तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गुण-दुर्व्यसनों से दूर कर बाहर-भीतर से तुम्हें धो डालेंगे-बाहर-अन्दर से तुम्हें स्वच्छ-निर्मल और निश्छल बना देंगे। भोग-विलासों से निवृत्त कर तुम्हें वे संयमी बना देंगे-तुम्हें वे दान्त और शान्त कर देंगे, तुम्हें वे शान्त और प्रसन्न कर देंगे, तुम्हें वे प्रसन्न और एकाग्र कर देंगे, तुम्हें वे एकाग्र से निरुद्ध कर देंगे। अर्थात् तुम्हें निरुद्ध चित्त वृत्ति वाला निस्तरङ्ग महोदधिकल्प-प्रशान्त समुद्र सम गम्भीर और विशाल हृदय वाला बना देंगे। तुम्हें वे पूर्ण समाधिस्थ कर, तुम्हारे शिरों पर अपना वरद हस्त रख कर तुम्हें फिर वे आशीर्वाद दे देंगे और कह देंगे कि जाओ बेटा ! अब तुम हमे भी भूल जाओ और उस प्राणप्रिय प्रभु के ध्यान में ऐसे खो जाओ-उस सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर में ऐसे डूब जाओ कि जैसे कोई गहरे पानी में डूब जाता है। तब तुम्हें वह वर लेगा-तब तुम्हें वह अपना लेगा-तब तुम पर उसकी कृपा हो जायेगी-तब तुम्हें ऐसा लगेगा-ऐसा अनुभव होगा कि तुम्हारे भीतर बाहर वही है-तुम्हारे अन्दर-बाहर वही है, तुम्हारे अगल-बगल, दायें-बायें वही है-तुम्हारे आगे-पीछे वही है, तुम्हारे ऊपर-नीचे वही है। उसी आनन्दघन परमपिता परमेश्वर के दिव्य आनन्दमय रस से परिपूर्ण तालाब में जब तू स्नान करेगा तो तब तू सब प्रकार से शान्त हो जायेगा, तृप्त-परितृप्त हो जायेगा। जब तू बाहर-भीतर से जाज्वल्यमान उस परम ज्योतिमें विराजमान हो जायेगा तब तेरे सारे अन्धकार दूर हो जायेंगे-तब तेरी नस-नस में एक ज्योति सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जग जायेगी, तब तेरे भीतर एक अद्‌भुत प्रकाश सा हो जायेगा, तब उसमें तू खोया हुआ संसार के सर्वविध प्रकाशों को भूल जायेगा। इसलिये मैं कहता हूँ कि तू उठ, जाग और सावधान होकर वरणीय श्रेष्ठ महापुरुषों की ओर भाग। उनके पास श्रद्धा से बैठ और उनसे प्राणप्रिय परमपिता परमेश्वर का रहस्य जान। इस विषय में तुम गफलत मत करना, न ही यह सोचना कि अभी तो बहुत समय पड़ा है, बुढ़ापे में यह सब कुछ कर लेंगे। क्योंकि कवियों का, ज्ञानी-महापुरुषों का कहना यह है कि—'यह पथ अत्यन्त दुर्गम है–यह प्रभु प्राप्ति का मार्ग अत्यन्त कठिन है। इस पर चलना तो ऐसा कठिन है कि जैसा सान पर चढे हुए–तेज किये हुए तीक्ष्ण छुरे की धार पर चलना कठिन है। अतः इसके लिये आज ही से जागो! आज ही से क्यों, अभी से ही जागो, उठो, और निद्रा-तन्द्रा और प्रमाद-आलस्य और भोग-विलास को त्यागो, और भागो उन श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जिनके पास इस विषय में कुछ है–जिनके पास यह अमूल्य निधि है। तब इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा भला होगा–कल्याण होगा।

हे नचिकेता वा हे साधक! उसके सम्बन्ध में तुम्हें और क्या बताएं कि वह कैसा है? वह शब्द नहीं है कि कानों से उसे सुना जा सके,वह स्पर्श नहीं है कि त्वचा से उसे स्पर्श किया जा सके, उस का कोई रूप नहीं है कि आँखों से उसे देखा जा सके, वह सांसारिक रसों के समान कोई ऐसा रस नहीं है कि रसना–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वा से उसे चखा जा सके, और वह कोई ऐसी सांसारिक गन्ध वाली वस्तु नहीं है कि इस नासिका से उसे सूंघा जा सके। हे नचिकेता यह तो अशब्द है, अस्पर्श है, अरूप है, अरस है, अगन्ध है, तो फिर कैसे इन ज्ञानेन्द्रियों से यह ग्रहण किया जा सकता है? यह तो अव्यय है–अविनाशी है, नित्य है–सदा एक रस रहने वाला है, अनादि है–इसका कोई कारण नहीं है; यह अनन्त है-इसका कोई अन्त नहीं पा सकता-पार नहीं पा सकता। अधिक क्या कहें, यह तो महतत्त्व से भी परे है अथवा इस महान् आत्मा–जीवात्मा से भी सूक्ष्म है, ध्रुव है–अचल है। ऐसे उस परम ब्रह्म परमेश्वर को जो जान लेता है–उसका जो साक्षात्कार कर लेता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है–वह मौत के पञ्जे से छूट जाता है–वह जन्मने-मरने से सब तरह से मुक्त हो जाता है।

मृत्यु यम के द्वारा कहे हुए इस नचिकेता सम्बन्धी–इस जीवात्मसम्बन्धी सनातन-सदासे चले आ रहे उपाख्यान को मनुष्य ब्रह्मलोक में-ब्रह्मज्ञानियोंकी सभा में सुनता-सुनाता है,तो वह वहाँ बड़ी महिमा को पाता है–बड़े स्नेह-सम्मान को प्राप्त होता है–बड़ी आव-भगत को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं इस गुह्य ज्ञान को-इस अत्यन्त सूक्ष्म रहस्यमय अध्यात्मज्ञान को ब्राह्मणों-ज्ञानी महापुरुषों की ससंद-सभा में तथा किसी की मृत्यु पर स्नेह-सम्मान-सहानुभूति एवं श्रद्धापूर्वक एकत्रित हुए मनुष्यों में जो सुनाता है–जो समझाता है, तो वह शनैः शनैः उन्हीं संस्कारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ओत-प्रोत हुआ-हुआ अनन्त फल के लिये समर्थ हो जाता है। अर्थात् वह उस फल को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है जिसमें फिर उसका पुनः पुनः अन्त नहीं होता। अर्थात् वह भी मोक्ष को पा जाता है।

चतुर्थ वल्ली

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्
पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदा-
वृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ २.१.१. ॥

अन्वयार्थः—(स्वयम्भूः खानि पराञ्चि व्यतृणत्) स्वयम्भू [अर्थात् अपनी सत्ता से विराजमान रहने वाले] परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी-बाहर की ओर खुलने वाली बनाया है। (तस्मात् पराङ् पश्यति न अन्तरात्मन्) इसलिये इन के द्वारा मनुष्य बाहर की ओर देखता है-भीतर की ओर नहीं, अर्थात् इनके द्वारा मनुष्य बाहर के विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। (अमृतत्वम् इच्छन् कश्चित् धीरः आवृत्तचक्षुः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत्) अमरत्व का इच्छुक-मोक्षाभिलाषी कोई विरला ही धीर-बुद्धिमान् मनुष्य ही आँखों को बन्द कर अन्तरात्मा को देखता है, अर्थात् पीछे को मुड़कर आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराचः कामाननुयन्ति बालास्
ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्त्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २.१.२. ॥

अन्वयार्थः—(बालाः पराचः कामान् अनुयन्ति) बालबुद्धि भोले-भाले साधारण अज्ञानी लोग बाह्य कामनाओं के पीछे चलते हैं पर वे उनके हाथ नहीं आतीं—बाहरी विषय भोगों के पीछे दौड़ते हैं, पर वे उनकी पकड़ में नहीं आते। उनको पकड़ना तो दूर रहा, और उल्टा (ते विततस्य मृत्योः पाशं यन्ति) वे स्वयं ही सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के पाश में जा फंसते हैं-मृत्यु के जाल में जा पड़ते हैं। (अथ धीराः अमृतत्त्वं विदित्वा इह अध्रुवेषु ध्रुवं न प्रार्थयन्ते) पर धीर-बुद्धिमान् ज्ञानी जन अमरत्त्व को—मोक्षधाम को जानकर फिर यहाँ इन अध्रुव पदार्थों में ध्रुव की आकांक्षा नहीं करते—अनित्य-अस्थिर-क्षण-भंगुर विषय भोगों में नित्य -स्थिर आनन्द की चाहना नहीं करते—तलाश नहीं करते।

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते॥एतद्वैतत्॥२.१.३॥

अन्वयार्थः—(येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शान् च मैथुनान् विजानाति) जिससे मनुष्य रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैथुनों अर्थात् विषय भोगों को जानता है, सो (एतेन एव) इस आत्मा-जीवात्मा से ही जानता है। इसलिये यह आत्मा ही इन सब विषयों का ज्ञाता है, ऐसा जान लेने पर-ऐसा समझ लेने पर-फिर (अत्र किं परिशिष्यते) यहाँ आत्मा के विषय में जानने योग्य क्या शेष रह जाता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। (एतत् वै तत्)१ हे नचिकेता! यह ही है वह आत्मा, जिसके विषय में तू ने पूछा था।

व्याख्या—परमेश्वर ने सब इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है-बाहर की ओर खुलने वाली बनाया है। इसलिये

टिप्पणी—१ प्रसङ्गवश यह अर्थ भी किया जा सकता है (एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है-जीवात्मा है जो अपने अत्यन्त समीप विद्यमान को जो जब जान लेता है तो फिर उसमें किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष के भाव नहीं रहते-घृणा-नफरत की वृत्ति नहीं रहती, फिर वह किसीं की निन्दा वा चुगली नहीं करता, किसी का अपमान-अपकार वा तिरस्कार नहीं करता।

अथवा

जो अर्थ ऊपर किया गया है कि यही वह आत्मा-परमात्मा है जिसको जान कर जीवात्मा फिर किसी की निन्दा नहीं करता, किसी का अपमान तिरस्कार नहीं करता, वरन् वह सब में अपने प्रियतम प्रभु को निहारता हुआ सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य इन इन्द्रियों के द्वारा प्रायः बाहर की ओर देखता है, अन्तरात्मा की ओर नहीं–प्राय: बाहर के ही पदार्थों को देखता है, परमात्मा की ओर नहीं। उन्हीं बाहर के विषय भोगों में ही वह सदा डूबा रहता है–भीतर विद्यमान अन्तर्यामी परम पिता परमात्मा की ओर जाने का तो उसे समय ही नहीं मिलता। उसका ध्यान-भजन करने की तो उसे फुर्सत ही नहीं मिलती। कोई बिरला ही धीर-ध्यानी ज्ञानी बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा होता है जो मोक्ष की अभिलाषा मन में लिये हुए अपनी चक्षुरादि इन्द्रियों को मून्द कर–बाह्य विषयों की ओर से रोकता है, और भीतर की ओर मुड़ कर अन्तरात्मा–अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

जो मनुष्य अन्तर्यामी परमेश्वर के दर्शन करना चाहता है–प्राणप्रिय प्रभु का साक्षात्कार करना चाहता है अर्थात् जिसे अमरत्व की अभिलाषा है, जिसे मुक्ति की इच्छा है, उसे चाहिये कि वह सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन करे-अपने नियन्त्रण में लाए, स्वेच्छा से विषय-भोगों में उन्हें इधर-उधर भटकने न दे। इस प्रकार जब वह इन्द्रियोंको संयममें रखेगा-इन्हें बाह्य रूप रस गन्ध स्पर्श और शब्द रूप विषयों से रोकेगा, अर्थात् चक्षु जिह्वा नासिका त्वचा श्रोत्र को विषय वासनाओं में नहीं रमने देगा, और उस समय उनके पीछे वर्तमान मन को भी रोकता रहेगा। अर्थात् मन में उन विषयों का चिन्तन भी नहीं करेगा, तो इन सब बाह्येन्द्रियों एवं अन्तरिन्द्रय मन आदि का सब व्यापार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनैः-शनै मन्द पड़ता जायेगा, और तब मनुष्य धारणा-ध्यान और समाधि द्वारा उस प्रभु का दर्शन पाने में समर्थ हो जायेगा।

जो अज्ञ होते हैं—अज्ञानी होते हैं, वे सदा बाह्य विषय-भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं। उन्हीं को पाने और भोगने में ही सदा वे अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को खोते रहते हैं। यह सब करने पर भी वे उन विषय-वासनाओं से कभी तृप्त नहीं होते। जितना जितना वे उनको भोगते रहते हैं, उतनी उतनी तृष्णा उनकी बढ़ती रहती है। अन्त में वे उन्हीं विषय-वासनाओं से जीर्ण-क्षीण होकर सर्वत्र फैले हुए यमराजके जाल में ऐसे फस जाते हैं—काल कराल के गाल में ऐसे पड़ जाते हैं-संसार से ऐसे गायब हो जाते हैं कि फिर चाहते हुए भी उन्हें हम देख नहीं सकते—चाहते हुए भी उन्हें हम मिल नहीं सकते। फिर कुछ दिनों में तो ऐसा लगने लगता है कि मानों वे कभी थे ही नहीं—मानो वे कभी हुए ही नहीं। किन्तु इसके विपरीत जो धीर होते हैं—ध्यानी बुद्धिमान् विद्वान् होते हैं, वे इस मानव जीवन का जो वास्तविक उद्देश्य प्रभु को पाना है, और जो जन्म-मरण के चक्र से छूट जाना है, वे उसी अपने परम उद्देश्य को पाने में लग जाते हैं। फिर वे अध्रुव पदार्थों में ध्रुव को नहीं खोजते—इन अस्थिर पदार्थों में स्थिर प्रभु को नहीं ढूँढते। वरन् वे तो इन अध्रुव पदार्थों से—इन अस्थिर पदार्थों से—इन क्षणभंगुर पदार्थों से—इन आपात रमणीय विषय-वासनाओं से विरक्त होकर—सावधान होकर सावधानी के साथ प्राणप्रिय परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्राप्ति में लग जाते हैं-धारणा ध्यान समाधि में लग जाते हैं।

जिसके होने से ही–जिस के विद्यमान रहने से ही मनुष्य आँखों से नाना रूपों को देखता है, रसना–जिह्वा से नानाविध रसों का आस्वादन करता है, घ्राण-नासिका से नाना प्रकार की गन्ध-सुगन्धों का ग्रहण करता है, श्रोत्र से सर्वविध शब्दों का श्रवण करत ाहै–कानसे सब प्रकारके शब्दों को सुनता है, त्वचा से सब प्रकार के स्पर्शों को अनुभव करता है, और उपस्थ से मैथुन सुखों को भोगता है–विषय भोग का आनन्द लेता है, वह आत्मा है,–वह जीवात्मा है।

जो उपयु क्त इन्द्रिय सङ्घात रूप शरीर से विषयों का ग्रहण करता है, यदि वह आत्मा ही इस शरीर से पृथक् हो जाए तो फिर यह मिट्टी के ढेर के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता। नचिकेता ने जो पूछा था कि मरने के पश्चात् क्या शेष रहता है? तो उस का उत्तर यह है कि जो चेतन सत्ता–जो चेतनशक्ति रूप, रस, गन्ध आदि का ग्रहण करती है। जिसके रहने से यह शरीर देवपुर बना रहता है, और जिसके न रहने से अर्थात् पृथक् हो जाने से यह शरीर मिट्टी का ढेर बन जाता है, वही शरीर से पृथक् हुई हुई चैतन्य सत्ता ही तो मरने के बाद शेष रहती है–वही आत्मा-जीवात्मा ही तो मरने के उपरान्त भी विद्यमान रहती है। यही आत्मा-जीवात्मा जानने योग्य है, इसको जानने के उपरान्त फिर इस शरीर में जानने के योग्य क्या शेष रह जाता है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अगले श्लोकों में ब्रह्म का निरुपण करते हुए वैवस्वत यम कहते हैं—

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥२.१.४॥

अन्वयार्थः—(येन स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति)जिसकी प्रेरणा से-जिसकी व्यवस्था से यह जीवात्मा-यह मनुष्य स्वप्नावस्था के अन्त और जागृतावस्था के अन्त अर्थात् स्वप्नसार और जागृतिसार—इन दोनों को देखता है, उस महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति) महान् सर्वत्र व्यापक आत्मा—सर्वान्तर्यामी परमात्मा को जानकर धीर-बुद्धिमान् विवेकी पुरुष फिर शोक नहीं करता

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते एतद्वैतत्॥२.१.५॥

अन्वयार्थः—(यः इमं मध्वदं—मधु-अदं जीवमन् अन्तिकात् भूत-भव्यस्य ईशानम् आत्मानं वेद) जो इस कर्मफल के भोक्ता जीव के अत्यन्त समीपवर्ती, भूत,वर्तमान और भविष्यत के—हुए हो, रहे और होने वाले सम्पूर्ण संसार के स्वामी आत्मा अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मा को जानता है,(ततः न विजुगुप्सते) फिर वह किसी से घृणा नहीं करता—किसी से द्वेष नह नहीं करता—किसी से नफरत नहीं करता—किसी की निन्दा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता–किसी की चर्चा नहीं करता–किसी का तिरस्कार नहीं करता।१(एतत् वै तत्) यहीं वह आत्मा है–अन्तर्यामी परमात्मा है–परब्रह्म परमात्मा है, जो तेरी जिज्ञास्य आत्मा का भी आत्मा है–जिज्ञास्य है।

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत ॥एतद्वैतत्॥
॥२.१.६.॥

अन्वय :—(यः तपसः पूर्वं जातम्) जो स्रष्टव्य पर्यालोचन रूप तप से भी पूर्व वर्तमान था–जो सृष्टि के निर्माणरूप तप से भी पूर्व विराजमान था और (अद्भ्यः पूर्वम् अजायत) जो पृथिवी अप, तेज पवन आदि स्थूल पञ्चभूतों से भी पहले मौजूद था-जो प्रकृति के गन्धतन्मात्रा:,रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा आदि प्रथम विकारभावों से भी पहले विद्यमान था, उस (गुहां प्रविश्य भूतेभिः तिष्ठन्त यः व्यपश्यत) हृदगुहा में प्रविष्ट होकर इन सब भूतों–जीवों के साथ स्थित विराजमान हुए-हुए परमेश्वर को जो देखता है, जो जानता है। एतत् वैतत्) यही है वह आत्मा–अन्तर्यामी परमात्मा जो आतमा का भी आत्मा है, जो तेरी आत्मा का भी जिज्ञास्य है।१

---

१ अथवा—यही है वह आत्मा–परमात्मा जो [कि सब भूतों के–सब जीवों के साथ हृदगुहा में स्थित हुआ-हुआ देवता है वही] तेरा जिज्ञास्य था जिस के विषय में तू ने पूछा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत ।।एतद्वैतत्।।
।। २.१.७. ।।

अन्वयार्थः—(या देवतामयो अदितिः प्राणेन सम्भवति) जो दिव्य गुणों वाली–प्रकाशमयी, अखण्ड ज्योति रूप ब्रह्म-शक्ति है वह प्राणायाम से प्रकट होती है। अर्थात् प्राणायाम से इन्द्रियों को मन के साथ और मन को आत्मा के साथ जोड़ कर आत्मा को अन्तर्मुखी कर–समाधिस्थ करके प्रकट की जा सकती है। (गुहां प्रविश्य भूतेभिः तिष्ठन्तीं या व्यजायत) हृद्गुहा में प्रविष्ट हुई–घुसी हुई सब जीवों के साथ स्थित हुई–हुई [या पञ्चभूतों के साथ स्थिर हुई–ठहरी हुई-हुई] जो प्रकट होती है (एतत्-वै तत्) यही वह आत्मा है–अन्तर्यामी परमात्मा है, जो तेरी आत्मा का भी आत्मा है–तेरी आत्मा का भी जिज्ञास्य है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।।
।। एतद्वै तत् ।। २.१.८ ।।

अन्वयार्थः—(अरण्योः निहितः जातवेदाः) अरणियों में-समिधाओं में अर्न्तनिहित–छिपी हुई अग्नि और (गर्भिणीभिः सुभृतः गर्भः इव) गर्भवती स्त्रियों द्वारा अच्छी तरह धारण किये हुए गुप्त गर्भ के समान हृद्गुहा में छिपा हुआ (अग्निः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागृवद्भिः हविष्मद्भिः मनुष्येभिः दिवे दिवे ईड्यः) सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर जागरूक-हवि समर्पक-आत्मरूप हविसमर्पक मनुष्यों के द्वारा प्रत्यहं-प्रतिदिन स्तुति करने योग्य हैं-उपासना करने योग्य है (एतत् वै तत्) यही है वह आत्मा-अन्तर्यामी परमात्मा जो आत्मा का भी आत्मा है, जो तेरी आत्मा-जीवात्मा का भी जिज्ञास्य है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन।।एतद्वै तत्
॥ २.१.९ ॥

अन्वयार्थः—(यतः च सूर्यः उदेति) जहाँ से सूर्य उदय होता है (यत्र च अस्तं गच्छति) और जहाँ अस्त होता है (तं सर्वे देवाः अर्पिताः) उसमें सब देव अर्पित हैं (तत् उ कश्चनः न अत्येति) उसको कोई भी नहीं लाँघ सकता (एतत् वै तत्) यही है वह आत्मा-अन्तर्यामी परमात्मा, जो आत्मा का भी आत्मा है-तेरी आत्मा का भी जिज्ञास्य है।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स
मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।२.१.१०।।

अन्वयार्थः—(यत् इह) जो यहाँ है (तत् एव अमुत्र) वही वहाँ है, और(यत् अमुत्र)जो वहाँ है (तत् अनु इह) वही यहाँ भी है। अर्थात् जो इस लोक में है परलोक में वही है और जो परलोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है वही इस लोक में भी है। (यः इह नाना इव पश्यति) जो यहाँ [इस विषय से–परमात्मा के विषय में] नानापन सा देखता है अर्थात् जो यहाँ के ब्रह्म को और, और वहाँ के ब्रह्म को और समझता है अर्थात् जो नाना ब्रह्म समझता है। (सः मृत्योः मृत्युम् आप्नोति) वह अज्ञानी मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है–मरण से मरण को प्राप्त होता है। अर्थात् वह मरता है और पैदा होकर पुनः मरता है। यही जन्म-मरण का चक्र उसका सतत् चलता ही रहता है।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥२.१.११॥

अन्वयार्थः—(मनसा एव इदम् आप्तव्यम्) मन से ही यह जानना चाहिये–समझना चाहिये–अनुभव करना चाहिये कि (इह किञ्चन नाना न अस्ति) इस ब्रह्म के विषय में कुछ भी नानापन नहीं है। (यः इह नाना इव पश्यति) जो इस ब्रह्म के विषय में नानापन सा देखता है–नानात्व अर्थात् यहाँ और ब्रह्म है और वहाँ और ब्रह्म, ऐसा अनुभव करता है (सः मृत्योः मृत्युं गच्छति) वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है–वह मर कर जन्म लेता है और जन्म लेकर पुनः मरता है। यह क्रम उसका चलता ही रहता है, जब तक कि वह एक अद्वितीय ब्रह्म में अनेकता का दर्शन करता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ एतद्वैतत् ॥
॥ २.१.१२ ॥

अन्वयार्थः—(भूत भव्यस्य ईशानः अंगुष्ठमात्रः पुरुषः) भूत और भविष्यत् का स्वामी, अंगुष्ठमात्र के हृदयाकाश में रहने के कारण से अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला, परम पुरुष परमात्मा (आत्मानि मध्ये तिष्ठति) जीवात्मा के मध्य में रहता है (ततः न विजुगुप्सते) उसके ज्ञान से फिर कोई किसी से घृणा नहीं करता–द्वेष नहीं करता–नफरत नहीं करता, उसको जान कर निन्दा नहीं करता–किसी का अपकार नहीं करता–किसी का तिरस्कार नहीं करता (एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है–अन्तर्यामी परमात्मा है, आत्मा का भी आत्मा है, जो इस आत्मा का भी जिज्ञास्य है ।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूत भव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ॥ एतद्वैतत् ॥
॥ २.१.१३ ॥

अन्वयार्थः—(भूत-भव्यस्य ईशानः अंगुष्ठमात्रः पुरुषः) भूत और भविष्यत् का स्वामी, अंगुष्ठमात्र हृदय स्थान में रहने के कारण अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला, पूर्ण पुरुष परमेश्वर (अधूमकः ज्योतिः इव) धूम रहित ज्योति के समान है–निर्धूम शुभ्र अग्नि के सदृश है। (सः एव अद्य) वही आज है और वही कल है। अर्थात् वह परमेश्वर जैसा आज है, वैसा ही वह कल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रहेगा। उसके लिये [बीते हुए] कल और [आने वाले] कल में कोई अन्तर ही नहीं पड़ता। क्योंकि वह सदा सर्वत्र एक सा रहता है–सब समयों में–सर्व स्थानों में सब के लिये एक सी न्यायव्यवस्था वाला रहता है। (एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है–अन्तर्यामी परमात्मा है, आत्मा का भी आत्मा है, अर्थात् इस आत्मा के लिये भी जिज्ञास्य है।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानु विधावति ॥२.१.१४॥

अन्वयार्थः—(यथा दुर्गे वृष्टम् उदकं पर्वतेषु विधावति) जैसे विशम देश में [पहाड़ की ऊँची चोटियों पर, जिन पर चढ़ना कठिन है उनपर] बरसा हुआ जल पर्वतके भिन्न-भिन्न निम्न-निचले भागों में बह निकलता है, और मनुष्य यह समझने लगता है कि ये जल एक नहीं, अनेक हैं–गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि आदि हैं। (एवं धर्मान् पृथक् पश्यन् तान् एव अनु विधावति) ऐसे ही धर्मी [ईश्वर] के धर्मों को देखता हुआ उन्हीं धर्मों के पीछे दौड़ता है, धर्मी ईश्वर के पीछे नहीं–गुणी के गुणों को गुणी से पृथक् देखता हुआ उन्हीं गुणों के पीछे दौड़ता है, गुणी ईश्वर के पीछे नहीं। अर्थात् ऐसे ही ईश्वर के जगत् रचना आदि धर्मों को–गुणों को ईश्वर से जो अलग समझता है, वह जगत् रचना आदि गुणों को तो मानता है–उन अनेक गुणों को तो स्वीकार करता है, पर गुणी परमेश्वर को नहीं मानता–नहीं स्वीकार करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥२.१.१५॥

अन्वयार्थः—(गौतम ! यथा शुद्धे [उदके] आसिक्तं शुद्धम् उदकं तादृक् एव भवति)। हे नचिकेता ! जैसे शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल वैसा ही शुद्ध रहता है (एवं विजानतः मुनेः आत्मा भवति) ऐसे ही हे नचिकेता ! विज्ञानी पुरुष का–ज्ञानी मननशील मनुष्य का आत्मा होता है। अर्थात् ऐसे ही मननशील पुरुष का संस्कृत-आत्मा शुद्ध परमात्मा में पड़ कर शुद्ध पवित्र ही रहता है।

जीव के बन्धन रूप पुर का निरूपण करते हुए उसके अनित्यत्व बोध से शोक मोह की निवृत्ति—

पुरुषमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ॥एतद्वैतत्॥
॥२.२.१॥

अन्वयार्थः—(अवक्रचेतसः अजस्य एकादशद्वारं पुरम् अनुष्ठाय न शोचति) सरल निश्छल चित्त वाले अजन्मा आत्मा-जीवात्मा के ग्यारह द्वारों वाले अर्थात् दो आँख, दो नाक, दो कान, एक मुख, गुदा द्वार, शिश्न-मूत्र द्वार, नाभि और ब्रह्मरन्ध्र वाले नगर का अनुष्ठान करके–यथार्थ सेवन कर के मनुष्य (न शोचति) शोक नहीं करता (विमुक्तः च विमुच्यते) और मुक्त होकर बन्धन से छूट जाता है। इस नगरी का जो अधिष्ठाता है (एतत् वै तत्)यही वह आत्मा-जीवात्मा है, जो एकादश द्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले इस देह रूपी नगर के नष्ट होने पर भी बना रहता है, जिसके सम्बन्ध में तूने पूछा था।

हँसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा
ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥२.२.२॥

अन्वयार्थः—(हँस शुचिषत्, वसुः अन्तरिक्षषत्, होता वेदिषत्, दुरोणसत्) जीवात्मा हँस, वसु, होता और अतिथि है। अतः अविद्या का हनन करने वाला, उत्तरोत्तर ऊँचा उठने वाला—निरन्तर आगे बढ़ने वाला [हँस रूप जीव—जीवात्मा [हँस जैसे शुद्ध पवित्र स्थान में रहता है वैसे ही यह] शुद्ध ब्रह्म में निवास करने वाला; वसु जैसे अन्तरिक्ष में निवास करते हैं वैसे वसु—जीव हृदयाकाश रूप अन्तरिक्ष में निवास करने वाला; होता जैसे वेदि में बैठकर अग्नि का चयन कर उसमें होम करता है वैसे होतारूप जीव वेदि में बैठकर नाचिकेत अग्नि का चयन कर उसमें आत्म समर्पणरूप होम करने वाला; अतिथि जैसे किसी घर पर आकर ठहरता है वैसे ही शरीर रूप घर में रहने वाला यह जीव उत्तरोत्तर विकास करता हुआ (नृषत्, वरसत्, ऋतसत्, व्योमसत्) नर देह में-मनुष्य चोले में, वर दहे में-वरणीय शरीर में, ऋत देह में-सदानियम में रहनेवाले शरीर में और इससे भी बढ़कर उत्कृष्ट व्योम देह—निष्काम भाव से चलने वाले शरीर में वास करता है। यह जीव जलों में वास करने से (अब्जाः, गोजाः, ऋतजाः, अद्रिजाः) जल में पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाला, पृथिवी पर पैदा होने वाला, सत्य नियम से उत्पन्न होने वाला, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाला और पर्वतों पर उत्पन्न होने वाला है।(ऋतं बृहत्)यह आत्मा सत्य है–नित्य है, कूटस्थ है, बड़ा है–प्रकृति से बड़ा है [पर ब्रह्म से छोटा है]।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते॥२.२.३॥

अन्वयार्थः—(प्राणम् ऊर्ध्वम् उन्नयति) जो प्राणवायु को ऊपर की ओर ले जाता है, (अपानं प्रत्यग् अस्यति) अपान वायु को नीचे की ओर फेंकता है, उस (मध्ये आसीनं वामनं विश्वे देवाः उपासते) बीच में–हृदयाकाश में बैठे हुए सुन्दर सेवनीय जीव की सब देव उपासना करते हैं–सब इन्द्रियाँ उपासना करती हैं–अपने व्यापारों के द्वारा उस को ब्रह्मज्ञान पहुँचाती हैं।

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते ॥ एतद्वै तत् ॥
॥ २.२.४. ॥

अन्वयार्थ :—(अस्य शरीरस्थस्य देहिनः) इस वामन रूप शरीर में स्थित देही–आत्मा के (विस्रंसमानस्य देहात विमुच्यमानस्य) सरकने पर अर्थात् इस देह से वियुक्त होने पर–छूटने पर-पृथक् होने पर-निकलने पर फिर(अत्र किं परिशिष्यते)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर यहाँ शरीर में क्या शेष रह जाता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। (एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है जिसके विषय में तूने पूछा था–जिसके विषय में तेरी जिज्ञासा थी।

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥२.२.५॥

अन्वयार्थ:—(कश्चन मर्त्यः न प्राणेन जीवति न अपानेन) कोई भी मनुष्य न तो प्राण से जीता और न ही अपान से, (इतरेण तु जीवन्ति)प्राण-अपान से भिन्न किसी अन्य ऐसी शक्ति से ये सब जीते हैं (यस्मिन् एतौ उपाश्रितौ) जिसमें ये दोनों आश्रित रहते हैं। यही वह आत्मा है जिसके विषय में तू ने पूछा था।

उपर्युक्त ५ श्लोकों में जीवात्मा का वर्णन है।

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवनि गौतम ॥२.२.६॥

अन्वयार्थ.—(गौतम! हन्त ते इदं गुह्यं सनातनं ब्रह्म प्रवक्ष्यामि) हे गौतम वंश में उत्पन्न होने वाले नचिकेता! अब मैं तुझे गुह्य-गोपनीय अनादि ब्रह्म के विषय में उपदेश करूँगा (यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति) और जैसे मृत्यु को पाकर आत्मा हो जाता है–जैसे मर कर आत्मा की गति होती है, वह भी बतलाऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥२.२ ७॥

अन्वयार्थः—(यथाकर्म यथाश्रुतं) जैसा जिसका कर्म होता है-जैसा जिसका ज्ञान होता है, उसी के अनुसार (अन्ये देहिनः शरीरत्वाय योनि प्रपद्यन्ते) कई जीव शरीर धारण करने के लिये मनुष्य पशु सरीसृप आदि जङ्गम योनियों को प्राप्त होते हैं और (अन्ये स्थाणुम् अनुसंयन्ति) कई जीव स्थावर अर्थात् जड़ योनियों को प्राप्त होते हैं।

जीवात्मा सम्बन्धी रहस्य बतलाकर यम ब्रह्म के विषय में कहता है-

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।एतद्वैतत्।
॥ २.२.८ ॥

अन्वयार्थः—(कामं कामं निर्मिमाणः यः एषः पुरुषः सुप्तेषु जागर्ति) जीवों के कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करता हुआ, जो यह सर्वत्र परिपूर्ण पुरुष परमेश्वर सब सोये हुए जीवों में भी जागता रहता है। (तत् एव शुक्रं) वही शुक्र है-प्रकाशमान है-तेजोमय है,(तत् ब्रह्म) वही ब्रह्म है-(तत् एव अमृतम् उच्यते) वही अमृत कहा जाता है, (तस्मिन् सर्वे लोकाः श्रिताः) उसी में ये सब लोक आश्रय पाए हुए हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तत् उ कश्चन न अत्येति) उसका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता—उसका कोईभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता(एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है—आत्मा का भी आत्मा अर्थात् परब्रह्म परमात्मा है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।
॥ २.२.६ ॥

अन्वयार्थः (यथा एकः अग्निः भुवन प्रविष्टः रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव) जैसे एक ही अग्नि समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हुआ—हुआ सकल संसार में समाया हुआ—हुआ रूप—रूप के अनुरूप हुआ—हुआ है, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के रूप के गदृश्य अपना रूप बनाये हुए है (तथा एकः सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च) वैसे ही एक अद्वितीय सर्वान्तिर्यामी परमेश्वर सब में प्रविष्ट हुआ-हुआ रूप रूप के अनुरूप हुआ-हुआ है-पदार्थ-पदार्थ के अनुरूप हुआ-हुआ है—प्रत्येक पदार्थ के सदृश रूप वाला है (बहिश्च) और वह प्रत्येक पदार्थ से बाहर भी है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूप प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥
॥ २.२.१० ॥

अन्वयार्थः—(यथा एकः वायुः भुवनं प्रविष्टः रूप रूप प्रतिरूपो बभूव) जैसे एक ही वायु समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ-हुआ-समस्त सृष्टि में समाया हुआ-हुआ रूप रूप के अनु-रूप हुआ-हुआ है (तथा एकः सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति-रूपो बहिश्च) वैसे ही एक अद्वितीय सर्वान्तर्यामी परमात्मा सब रूपों में प्रविष्ट हुआ-हुआ रूप रूप के अनुरूप हुआ-हुआ है-प्रत्येक पदार्थ के सदृश रूप वाला है। (बहिः च) वह प्रत्येक पदार्थ के जहाँ भीतर है वहाँ सब पदार्थों के बाहिर भी है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोक-दुःखेन बाह्यः ॥ २.२.११ ॥

अन्वयार्थ-(यथा सर्वलोकस्य चक्षुः सूर्यः) जैसे समस्त ब्रह्माण्ड का चक्षुरूप सूर्य (चाक्षुषैः बाह्यदोषैः न लिप्यते) चक्षु सम्बन्धी बाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता (तथा एकः सर्वभूतान्तरात्मा लोक दुःखेन न लिप्यते) वैसे ही एक अद्वितीय सर्वान्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा भी संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, क्योंकि (बाह्यः) वह सबके भीतर रहता हुआ भी सबसे बाहर है-पृथक् है।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीरास्
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥२.२.१२॥

अन्वयार्थः—(यः एकः वशी सर्वभूतान्तरात्मा) जो एक-अद्वितीय, सबको वश में करने वाला, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एकं रूपं बहुधा करोति)एक रूप वाली प्रकृति को–साम्यावस्था वाली प्रकृति को बहुत रूपवाली कर देता है, अर्थात् मूल प्रकृति को नानाविध सृष्टि के रूप में बदल देता है (तम् आत्मस्थं ये धीराः अनुपश्यन्ति) उस आत्मा में स्थित परमात्मा को जो धीर बुद्धिमान् ध्यानी ज्ञानी जन देखते हैं (तेषां शाश्वतं सुखम्) उनको शाश्वत सुख मिलता है–स्थिर सुख मिलता है (इतरेषां न) दूसरों को नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥२.२.१३॥

अन्वयार्थः—(नित्यानां नित्यः) जो नित्यों में नित्य (चेतनानां चेतनः) चेतनों में चेतन और (बहूनाम एकः) बहुतों में एक है, जो (कामान् विदधाति) सबके कर्मफलों का विधान करता है (तम् आत्मस्थं ये धीराः अनुपश्यन्ति) उस आत्मा में विराजमान परमेश्वर को जो ध्यानी ज्ञानी बुद्धिमान् जन देखते हैं (तेषां शाश्वती शान्तिः) उन्हीं को स्थायी शान्ति मिलती है (इतरेषां न) दूसरों को नहीं।

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥२.२.१४॥

अन्वयार्थः—(तत् एतत इति) वह ऐसा है, इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानी ज्ञानी जन (अनिर्देश्यं परमं सुखं मन्यन्ते) उसको अनिर्व-चनीय परम सुख मानते हैं। अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों का यह कहना है कि वह ऐसा अद्वितीय परम सुख है कि वाणी से वह कहा नहीं जा सकता और अँगुली आदि से वह निर्देश नहीं किया जा सकता कि 'वह ऐसा है', ऐसी स्थिति में साधक कहता है वा नचिकेता कहता है कि (तं कथं नु विजानीयां) तो फिर मैं उसको कैसे जानूँ ? (किम् उ भाति विभाति वा) क्या वह प्रकाशित होता है वा अन्यों का प्रकाशित करता है ?

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।२.२.१५।।

अन्वयार्थ —(तत्र न सूर्यः भाति) उस ब्रह्म में न सूर्य प्रकाश करता है, (न चन्द्रतारकं) न ये चन्द्र तारे (न इमाः विद्युतः भान्ति) और न ही ये विद्युते-बिजलियाँ (कुतः अयम् अग्निः) फिर यह अग्नि तो कहाँ से प्रकाश करेगी ? क्योंकि (तम् भान्तम् एव सर्वम् अनुभाति)उसके प्रकाशित होने पर ही-उसके दीप्तिमान होने पर ही यह सब जगत् प्रकाशित होता है-यह सब जगत् दीप्तिमान होता है (तस्य भासा इदं सर्वं विभाति) उसके प्रकाश से ही यह सब प्रकाशित होता है-उसकी दीप्ति से ही यह सब दीप्तिमान होने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ब्रह्म को न यह सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न ये चन्द्रतारे और न ही ये विद्युतें, तो फिर यह अग्नि तो कहाँ से करेगी—यह अग्नि तो कैसे करेगी ? क्योंकि उसके प्रकाशित होने के अनन्तर ही यह सब प्रकाशित होता है। वास्तव में उसके प्रकाश से ही यह सब प्रकाशित होते हैं।

षष्ठ वल्ली

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।एतद्वैतत्॥
॥ २.३.१ ॥

अन्वयार्थः—(ऊर्ध्वमूलः अवाक्शाखः एषः सनातनः अश्वत्थः) ऊपर की ओर मूल—जड़ वाला और नीचे की ओर शाखावाला यह सनातन-प्रवाह से अनादि अश्वत्थ अर्थात् कल तक न रहनेवाला मनुष्य का यह शरीररूप बृक्ष है। ऐसा वृक्ष जिसके आधार पर स्थित है (तत् एव शुक्रम्) वही सर्वाधार परमेश्वर शुक्र है—प्रकाशस्वरूप है—तेजः स्वरूप है,(तत् ब्रह्म) वही ब्रह्म है-सबसे महान् है, और (तत् एव अमृतम् उच्यते) वही अमृत कहा जाता है (तस्मिन् सर्वे लोकाः आश्रिताः) उसी में सब लोक आश्रय पाये हुए हैं। (कश्चन तत् न अत्येति) कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। (एतत् वै तत्) यही वह आत्मा है-आत्मा का भी आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी परमात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदिदं किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२.३.२॥

अन्वयार्थः—(यत् किं च इदं निःसृतं जगत् [तत्] सर्वं प्राणे एजति) जो कुछ भी यह उत्पन्न हुआ जड़-जङ्गम-जगत् है, वह सब प्राण स्वरूप परमेश्वर१ में गति कर रहा है (उद्यतं वज्रम् महत् भयम्) यह प्राणस्वरूप परमेश्वर उठे हुए वज्र के समान महाँ भयङ्कर है (ये एतत् विदुः) जो इसको जानते हैं। (ते अमृताः भवन्ति) वे अमर हो जाते हैं—जन्म-मरण के बन्धन से छूट कर मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥३.३.३॥

अन्वयार्थः—(अस्य भयात् अग्निः तपति) इसी प्राण-स्वरूप परमेश्वर के भय से अग्नि तपती है—जलती है (भयात् सूर्यः तपति) इसी के भय से सूर्य तपता है—प्रकाशित होता है—तेज और प्रकाश देता है (भयात् इन्द्रः च वायुः च) और इसी के भय से इन्द्र-विद्युत और वायु अपना-अपना कार्य करते हैं तथा (पंचमः मृत्युः धावति) इसी के भय से यह पांचवाँ मृत्यु भी दौड़ता है—फटाफट अपना कार्य करता है। अर्थात् ये सभी उसी

---

१. परमेश्वर प्राण है जैसा कि अथर्व ४.११.१ में कहा गया है—
"प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।" प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नियमों में बन्धे हुए उसी के डर से अपना-अपना कार्य कर रहे हैं।

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥२.३.४॥

अन्वयार्थः—(शरीरस्य विस्रसः प्राक्) इस शरीर के छूटने से-समाप्त होने से-नष्ट होने से पूर्व (इह चेत् बोद्धुम् अशकत्)यहाँ रहते हुए ही–इस जीवन में ही यदि उस परब्रह्म परमात्मा को जान सका वा जानने में समर्थ हो सका, तो ठीक, नहीं तो (ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते) फिर सृष्टि उत्पन्न होने के समय उत्पन्न होने वाले लोकों में पुनः पुनः शरीर धारण करता रहेगा। अर्थात् अनेकों कल्पों तक नाना लोकों में, नाना योनियों के शरीर धारण करने को उसे मजबूर होना पड़ेगा।

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्व लोके
छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ २.३.५ ॥

अन्वयार्थः—(यथा आदर्शे तथा आत्मनि) जैसे दर्पण में, वैसे ही आत्मा में–आत्मलोक में–शुद्ध अन्तःकरण में ब्रह्म के दर्शन होते हैं; (यथा स्वप्ने तथा पितृलोके)जैसे स्वप्न में, वैसे ही पितृलोक में बड़े-बूढ़ों के सहयोग से उसके दर्शन होते हैं; (यथा अप्सु तथा गन्धर्वलोके परि इव ददृशे) जैसे जलों में, वैसे ही वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी के धारण करने वाले ज्ञानियों के लोक में—ज्ञानी वेदज्ञों के सहयोग से चहु ओर चलस्वरूप सा दीखता है; (छाया आतपयोः इव ब्रह्मलोके) छाया और धूप की भाँति ब्रह्मलोक में—ध्यानी, ज्ञानी, योगी, तपस्वियों के लोक में उनके सहयोग से ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥२.३.६॥

अन्वयार्थः—(पृथक् उत्पद्यमानानाम् इन्द्रियाणाम्) आत्मा से पृथक् अपने-अपने कारणों से भिन्न-भिन्न रूपों में उत्पन्न हुई-हुई इन्द्रियों के (पृथक् भावं उदयास्तमयौ च यत्) पृथक्-पृथक् भाव को—पृथक्-पृथक् सत्ता को और जो उनका उदय और अस्त होना है—जो उनका जाग्रत अवस्था में उदय और सुषुप्ति अवस्था में लय होना है या जो उनका उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होना है।और आत्मा के उदय और अस्त वा उत्पन्न होने और नष्ट होने से जो पृथक् भाव है—जो सदा स्थिर रहना है] उसी रहस्य को (मत्त्व धीरः न शोचति) जानकर फिर धीर-बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता।

धीर-बुद्धिमान् मनुष्य जब यह जान लेता है कि आत्मा से पृथक् इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं पर आत्मा नहीं उत्पन्न होता अर्थात् इन्द्रियों का उदय और अस्त होता है—इन्द्रियों की उत्पत्ति और विनाश होता है, आत्मा का नहीं। इसलिये इन्द्रियाँ अनित्य हैं—क्षणभंगुर हैं-अस्थिर हैं और आत्मा नित्य है—स्थायी है—स्थिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस प्रकार जो जानता है वह (धीरः न शोचति) धीर-बुद्धिमान् जन फिर शोक नहीं करता।

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥२.३.७॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्त्वं च गच्छति ॥२.३.८॥

अन्वयार्थः—(इन्द्रियेभ्यः मनः परम्) इन्द्रियों से मन पर है–सूक्ष्म है–श्रेष्ठ है–उत्तम है, (मनसः सत्त्वम् उत्तमम्) मन से बुद्धि उत्तम है, (सत्त्वात् अधि महान् आत्मा) बुद्धि से ऊपर महत्तत्त्व है–बुद्धि से सूक्ष्म महतत्त्व है–बुद्धि से उत्तम महतत्त्व है (महतः अव्यक्तम् उत्तमम्) महतत्त्व से अव्यक्त प्रकृति उत्तम है–सूक्ष्म है।

(अव्यक्तात् तु पुरुषः परः) पर अव्यक्त प्रकृति से पुरुष–परमेश्वर पर है–सूक्ष्म है, उत्तम है, (व्यापकः आलिङ्ग. एव च) और जो सर्वव्यापक और अलिङ्ग अर्थात् चिह्न रहित ही है, (यत् ज्ञात्वा जन्तुः मुच्यते) जिसको जानकर यह मनुष्य मुक्त हो जाता है–जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है, (अमृतत्त्वं च गच्छति) और अमरत्त्व को प्राप्त हो जाता है–अमृतस्वरूप–आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर को पा लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाधि क्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२.३.९॥

अन्वयार्थः—(अस्य रूपं सन्दृशे न तिष्ठति) इसका रूप दृष्टि में नहीं आता—इसका रूप देखने में नहीं आता, अतः (एनं कश्चनः चक्षुषा न पश्यति) इसको कोई भी आँख से नहीं देख सकता—चक्षुरादि इन्द्रियों से नहीं जान सकता, हाँ (हृदा मनीषा मनसा अभिक्लृप्तः)हृदय बुद्धि तथा मन से वह जाना जा सकता है—स्वच्छ निर्मल हृदय, अन्तर्मुखी सात्विक बुद्धि और मननशील मन से वह समझ में आ सकता है—अनुभव किया जा सकता है। (ये एतत् विदुः) जो इस प्रकार इसको जान जाते हैं (ते अमृताः भवन्ति) वे फिर अमर हो जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥२.३.१०॥

अन्वयार्थः—(यदा पञ्चज्ञानानि मनसा सह अवतिष्ठन्ते) जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ भली-भाँति स्थिर हो जाती हैं—टिक जाती हैं (बुद्धिः च न विचेष्टते) और बुद्धि भी जब विचलित नहीं होती—किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, तो (तां परमां गतिम् आहुः) उसको योगी जन परम गति कहते हैं। जब जिह्वा, चक्षु, श्रोत्र, नासिका और त्वचा रूप पञ्च ज्ञाने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्द्रियाँ मन सहित शान्त हो जाती हैं–अपने कार्य व्यवहार से निवृत्त हो जाती हैं और बुद्धि भी जब इधर-उधर का विचार नहीं करती तो ऐसी जो साधक की स्थिति है उसे ज्ञानी-ध्यानी जन परम गति कहते हैं।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥२.३.११॥

अन्वयार्थः—(तां स्थिराम् इन्द्रियधारणां) उस स्थिर इन्द्रिय धारणा को–एकाग्रता को [जिसमें पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन सहित स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी जिस अवस्था में कुछ सोचती विचारती नहीं, उस अवस्था को] (योगम् इति मन्यन्ते) योगी जन योग मानते हैं। (तदा अप्रमत्तः भवति) तब उस समय साधक अप्रमत्त हो जाता है, उन्मत्त–प्रमत्त तो वह तब रहता ही नहीं। तब वह अप्रमत्त हो जाता है,सब प्रकार से शान्त हो जाता है। अशान्त तो वह तब रहता ही नहीं। तब वह साधक अप्रमत्त हो जाता है–प्रमाद रहित हो जाता है–सजग हो जाता है–सावधान हो जाता है–अपने लक्ष्य के प्रति सब प्रकार से सतर्क हो जाता है–जीवन के एक-एक पल के सदुपयोग करनेके लिये वह तैयार हो जाता है।(योगः हि प्रभवाप्ययौ) योग वास्तव में प्रभव और अप्यय है–उत्पत्ति और लय है [-नाश है] क्योंकि इस अवस्था में साधक में अप्रमत्तता का उदय होता है और उन्मत्तता का लय होता है–शान्ति का उदय होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अशान्ति का लय होता है–सजगता–सावधानी उस समय आती है और निर्जगता–असावधानी जाती है, यह योग शुभ का (उदय) प्रवर्त्तक और अशुभ का (अस्त) निवर्तक है।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥२.३.१२॥

अन्वयार्थः—(न एव वाचा, न मनसा, न चक्षुषा प्राप्तुं शक्यः) वह परम पिता परमेश्वर न तो वाणी से, न मन से और न चक्षु से ही प्राप्त किया जा सकता है ('अस्ति' इति ब्रुवतः अन्यत्र) वह है, ऐसा कहने वाले साधक से अन्यत्र–वह है, इस प्रकार जानने मानने और कहने वाले के अलावा दूसरे मनुष्य में (तं कथम् उपलभ्यते) उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता हैं। अर्थात् किसी ने कह दिया कि वह है–निश्चय ही वह है, तो ऐसा कहने वाले के इस कथन मात्र से दूसरे को वह कैसे समझ में आ सकता है। क्योंकि उसके अस्तित्व को जानने-पाने के लिये तो उसे भी पूर्ववत् साधना करनी पड़ेगी तभी तो वह उसकी समझ में आ सकता है–तभी तो वह उसको पा सकता है।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥२.३.१३॥

अन्वयार्थः—(उभयोः च तत्त्वभावेन) अस्ति और नास्ति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् वह है और वह नहीं है, इन दोनों के तत्त्वभाव से–इन दोनों के तात्त्विक विवेचन से–तत्त्व ज्ञान से १(अस्ति-इति-एव उपलब्धव्य:) वह है, यह जानकर ही–इस निर्णय पर पहुँच कर ही वह प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि(अस्ति-इति-एव उपलब्धस्य:) वह है, इस ही निश्चय से उपलब्ध किये हुए का [जिसने उसको उपलब्ध कर लिया है उसका] (तत्त्वभाव: प्रसीदति) वह तात्त्विक भाव ही–वह तत्त्वनिर्णय ही–उसका वह तात्त्विज्ञान ही विकसित होता है–खिलता है–निखरता है। जिसने उसे 'अस्ति'–'है' ऐसा समझा, उसी ने उसको पाया। उसी ने उसे 'नास्ति'-'नहीं है' ऐसा समझा, वह उसको पाने का क्या तो प्रयत्न कर सकता है और उसको क्या तो पा सकता है ?

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा: येऽस्य हृदिश्रिता:।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।।२.३.१४।।

अन्वयार्थ:—(ये अस्य हृदिश्रिता: कामा:) जो इस मनुष्य के हृदय में स्थित कामनाएं हैं (ते सर्वे यदा प्रमुच्यन्ते) वे सब की सब जब छूट जाती हैं (अथ मर्त्य: अमृत: भवति) तब यह

---

१. क्योंकि जो 'वह है' इस निर्णय पर ही नहीं पहुँचा तो वह उसे क्या प्राप्त कर सकता है क्योंकि तब तो वह उसे जानने के लिये कुछ करेगा ही नहीं। अत: उसका तात्त्विक निश्चय पूर्व अपेक्षित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरण-धर्मा मनुष्य अमर हो जाता है—मुक्त हो जाता है—[संसार रूप कारागार से-शरीर रूप कारागार से छूट जाता है] (अत्र ब्रह्म समश्नुते) यहीं पर ही—इस मोक्षावस्था में ही वह फिर परब्रह्म परमेश्वर को पा लेता है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥२.३.१५॥

अन्वयः—(इह यदा हृदयस्य सर्वे ग्रन्थयः प्रभिद्यन्ते) इसी जन्म में ही—इसी मानव चोले में ही जब इस साधक के हृदय की सभी ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं—सभी गाँठे खुल जाती हैं (अथ मर्त्यः अमृतः भवति) तब यह मनुष्य अमर हो जाता है—मुक्त हो जाता है—जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है। (एतावत् हि अनुशासनम्) बस इतना ही अनुशासन है—बस इतनी ही शिक्षा है—बस इतना ही आदेश है—बस इतना ही उपदेश है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥
॥२.३.१६॥

अन्वयार्थः—(हृदयस्य शतं च, एका च नाड्यः) हृदय की सौ आर एक अर्थात् एक सौ एक नाड़ियाँ हैं (तासाम् एका मूर्धानम् अभिनिःसृता) उनमें से एक मूर्धा-सिर-कपाल-ब्रह्मरन्ध्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ओर गई है (तथा उर्ध्वम् आयन् अमृतत्वम् एति) उसी ऊपर को जाने वाली नाड़ी से ऊपर को निकलता हुआ–ऊपर को जाता हुआ यह जीवात्मा अमरत्व को प्राप्त होता है–अमर पद मोक्ष को प्राप्त होता है (अन्याः उत्क्रमणे विष्वङ् भवन्ति) अन्य नाड़ियाँ इस जीवात्मा के उत्क्रमण काल में–मरण वेला में इसको नाना योनियों में ले जाने का कारण बनती हैं। अर्थात् इनके द्वारा सामान्य मनुष्य नाना योनियों को प्राप्त होते हैं।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति॥२.३.१७॥

अन्वयार्थः—(अंगुष्ठमात्रः अन्तरात्मा पुरुषः) अंगुष्ठ परिमाण वाला–अँगूठे के बराबर हृदयाकाश में रहने वाला जीवात्मा पुरुष (सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः) सदा–हमेशा सब प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट है–सन्निविष्ट है (तं मुञ्जात् इषीकाम् इव स्वात् शरीरात् प्रवृहेत) उसको मूञ्ज से इषीका के समान–मूञ्ज से सींक की भान्ति (स्वात् शरीरात् धैर्येण प्रवृहेत) अपने शरीर से बड़े धैर्य से निकाले। उसके ऐसा करने पर बिना हीलो–हुज्जत किये हुए–बिना ननु-नच किये हुए यदि वह मूञ्ज से सींक की तरह खुशी-खुशी सहज ही शरीर से बाहर आ जाता है तो (तं शुक्रम्-अमृतं विद्यात्) उस आत्मा को शुक्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत जाने। अर्थात् उस आत्मा को शुक्र अर्थात् अत्यन्त पवित्र-अत्यन्त तेजस्वी-ज्ञान ज्योति से जाज्वल्यमान-दिव्य देव की दिव्य दीप्ति से देदीप्यमान-प्राणप्रिय प्रभु के परम प्रकाश से प्रकाशमान हुआ-हुआ और अमृत अर्थात् परमपद मोक्ष को प्राप्त हुआ-हुआ समझे।

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्ध्वा,
विद्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम्।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं
यो विदध्यात्ममेव ॥२.३.१८॥

अन्वयार्थः—(अथ मृत्युप्रोक्ताम् एतां विद्याम्) अब मृत्यु-यमाचार्य से प्रोक्त अर्थात् कही हुई इस आत्म-परमात्म सम्बन्धी विद्या को-इस अनुपम अध्यात्म विद्या को (कृत्स्नं योगविधिं च लब्ध्वा) सम्पूर्ण योगविधि को जान कर (नचिकेतः ब्रह्मप्राप्तः विरजः विमृत्युः अभूत्) नचिकेता ब्रह्मप्राप्तः-परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त हुआ-हुआ, विरजः-संसाराभिमुखी राग-मोह आदि सर्वविध वृत्ति-प्रवृत्तियों से सर्वथा रहित हुआ-हुआ अर्थात् संसार से पूर्णया विरक्त हुआ-हुआ, विमृत्युः अभूत्-मृत्युरहित हो गया है। अर्थात् मरण-जन्म और जन्म-मरण से सर्वथा मुक्त हो गया है-संसाररूप कारागार में आने-जाने से छूट गया है, अर्थात् अमर हो गया है। केवल वह ही ऐसा हो गया-ऐसी बात नहीं, वरन् (अन्यः अपि यः एवंवित् अध्यात्मम् एव) अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जो कोई इस प्रकार इस अध्यात्म विद्या आदि को जानेगा, वह भी ऐसे ही जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर अमर हो जायेगा।

जो दिव्य गुणों वाली अदिति है-ज्योतिर्मयी ब्रह्मशक्ति है, जो सब भूतों के साथ-सब प्राणियों के साथ हृदगुहा में अनुप्रविष्ट हुई-हुई विराजमान हो रही है, वह प्रकट होती है-उसका दर्शन होता है-उसका साक्षात्कार होता है। परन्तु वह प्रायाम की रीति से होता है। प्राणायाम से इन्द्रियों को विषयों से रोक कर मन के साथ जोड़ा जाता है, और मन में विषयगत संस्कारों को रोककर उसे आत्मा के साथ जोड़ कर अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाया जाता है, फिर समाधिस्थ होकर उसका साक्षात्कार होता है। यह वह आत्मा है-परमात्मा है।

अरणियों में-अधरार्णि और उत्तरार्णि-नीचे ऊपर के काष्ठखण्डों में जो अन्तर्निहित-छिपी हुई अग्नि होती है, और गर्भिणी स्त्रियों के द्वारा जैसे गर्भ धारण किया हुआ होता है, वैसे ही वह प्रकाशस्वरूप प्राणप्रिय प्रभु भी हृद्गुहा में अन्तर्निहित है। जैसे अरणियों की रगड़ से अग्नि प्रकट होता है,जैसे गर्भिणी स्त्री की अत्यन्त तप और सावधानी से वह गर्भ बालकरूप में प्रकट होता है, ऐसे ही यह अग्नि देव-प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर भी प्रकट होता है, इसका भी साक्षात्कार होता है, पर उनको होता है। जो हृदय से चाहते हैं।

इस प्रकार जागरूक साधक प्रतिदिन इस स्तुत्य अग्नि की स्तुति करते हैं तो वह भी प्रकट होता है। पर एक बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है सदा उसका जप तप पूर्वक ध्यान किया जाता है तो तब ही वह मिलता है। कहने का अर्थ यह है कि जब वे जागरूक होते हैं, मननशील होते हैं, हवि वाले होते हैं अर्थात् उनके पास जो कुछ होता है उसे वे 'हवि' समझते हैं—उसे वे सदा हवि सम अग्नि से छोड़ने के लिये सदा तैयार रहते हैं, वे फिर किसी वस्तु से चिपटते नहीं। जैसे यजमान अग्नि में अपनी सब समिधाएं, सामग्री और घृत होम कर देता है—'स्वाहा' कहकर समर्पित कर देता है, वैसे ही वे परब्रह्म परमेश्वर रूप अग्नि में सब होम करने को—समर्पित करने को उद्यत रहते हैं। यही वह आत्मा है—परमात्मा है अन्तर्यामी परमात्मा है।

जहाँ से सूर्य उदित होता है और जहाँ यह अस्त होता है। अर्थात् जिस परमेश्वर से यह आदित्य प्रकट होता है और जिस में जाकर यह अन्त में विलीन होता है वा जिसकी व्यवस्था—नियम में चलकर समय पर यह सूर्य उदय होता है और समय पर ही अस्त होता है, उसी परब्रह्म परमेश्वर में सब देव अर्पित है—उसके नियम में बन्धे हुए ये सभी पृथिवी अप तेज वायु आदि अपना अपना कार्य कर रहे हैं। कोई भी तो ऐसा नहीं जो उसके नियमों का अतिक्रमण कर सके। इन सब लोक-लोकान्तरों में रहने वाले प्राणी भी उसके नियमों में बन्धे हुए कर्मानुसार अपनी अपनी योनि रूप कारागार में पड़े हुए समय बिता रहे हैं जैसे कोई बन्दर कोई हाथी घोड़े आदि-२ योनियों में। यदि कोई मानव योनि में से आत्महत्या करके भाग जाता है तो उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथी घोड़े बन्दर आदि ऐसी योनि रूप कारागार में प्रभु डाल देताहै कि फिर वह आत्महत्या करके उस योनि रूप जेल से भाग ही न सके। यही है वह आत्मा–परमपिता परमात्मा–आत्मा का भी आत्मा–अन्तर्यामी परमात्मा।

जो यहाँ है, वही वहाँ है; जो वहाँ है, वही यहाँ भी है। अर्थात् जो यहाँ पृथिवी पर है, वही द्युलोक में भी है; जो द्युलोक में है, वही इस पृथिवी पर भी है। तात्पर्य यह है कि यहाँ-वहाँ, वहाँ–यहाँ सर्वत्र एक ही परब्रह्म परमेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप रहा है। कोई भी तो समय और स्थान ऐसा नहीं जहाँ कि वह अद्वितीय ब्रह्म न विराजता हो। ऐसा होने पर भी जो इस विषय में नानापन देखता है, अर्थात् यहाँ कोई और ब्रह्म रहता है और वहाँ कोई और; वहाँ कोई और ब्रह्म रहता है और यहाँ कोई और, कल कोई और ब्रह्म था और आज कोई और; आज कोई और ब्रह्म है और कल कोई और ब्रह्म रहेगा, ऐसा जो देखता, सुनता और विचारता है, वह फिर मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है–जन्म मरण के चक्र में ही फंस जाता है। इसके विपरीत जो सर्वत्र एकत्व देखता है वह उस एक में रम जाता है–उस एक में लीन हो जाता है और आनन्दमय हो जाता है।

मन से ही–मनन से ही यह जानना चाहिये–यह समझना चाहिये–यह अनुभव करना चाहिये कि इस ब्रह्म में नानात्व नहीं है–नानापन नहीं है। फिर भी यदि कोई इस ब्रह्म के विषय में नानात्व अनुभव करता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मर कर जन्मता है और जन्म कर पुनः मरता है। यह क्रम उसका चलता ही रहता है जब तक कि उसमें नानात्व चलता रहता है।

यह अँगुष्ठमात्र स्थान में विराजमान इस जीवात्मा के भीतर अँगुष्ठमात्र परिमाण वाले इस आत्मा के मध्य में परब्रह्म परमेश्वर विराजमान रहता है। यही भूत-वर्तमान और भविष्यत् का स्वामी है-शासक है। सारा ब्रह्माण्ड इसी के अनुशासनमें चल रहा है। इसको अँगुष्ठमात्र परिमाण वाले हृदय में विद्यमान जो जान लेता है-समझ लेता है वह मानों सब जगत् में सर्वत्र कण-कण में विराजमान रहने वाले परमेश्वर को भी समझ लेता है। जैसे कोई बालक पिता की अँगुली वा अँगूठा पकड़ कर यह समझ लेता है कि उसने सम्पूर्ण पिता को पकड़ लिया है। ऐसे ही हृदयस्थ ब्रह्म को जानने और इसका आश्रय लेने पर सब जग में व्यापक ब्रह्म को जान कर उसका आश्रय ले लिया जाता है। ऐसे हृदयस्थ ब्रह्म को जानने पर फिर वह व्यक्ति किसी से घृणा द्वेष नहीं करता, किसी की निन्दा व चुगली नहीं करता, किसी का अपमान तिरस्कार नहीं करता। यही वह आत्मा है— सर्वान्तिर्यामी परम पिता परमात्मा है।

भूत-भविष्यत् का स्वामी अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला यह परम पुरुष परमेश्वर निर्धूम-शुभ्र ज्योति के समान है। यह तो ऐसा है-कि जैसे वह आज है वैसा ही वह कल भी रहता है। जैसा वह कल रहेगा वैसा ही वह परसों भी रहेगा। अर्थात् वह सदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके लिये एक सा रहता है। यही वह आत्मा है–आत्मा का भी आत्मा है–सर्वान्तर्यामी परमपिता परमात्मा है।

जैसे दुर्गम स्थान पर–दुर्गम पर्वत पर बरसा हुआ जल पर्वत के निम्न प्रदेशों में इधर-उधर बह निकलता है और उसी एक वृष्टि के जल को सब गङ्गा यमुना सरस्वती आदि के नाम से पुकारते हैं, ऐसे ही परब्रह्म परमेश्वर के जगत्-रचना आदि धर्मों को उससे पृथक् जानकर वा गुणी परमेश्वर के नानाविध गुणों को उससे पृथक् देखकर उन धर्मों के–उन गुणों के पीछे तो ये मनुष्य दौड़ें–उनको तो ये मानें पर धर्मी परमेश्वर वा गुणी परमेश्वर की सत्ता से इनकार करे, तो ऐसा ज्ञान जो मनुष्य को उस धर्मी परमेश्वर–गुणी जगदीश्वर से ही पृथक् करेगा तथा वह ज्ञान उस के पुनः पुनः जन्मने और मरने का कारण बनेगा।

हे नचिकेता—जैसे शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल सदा वैसा ही शुद्ध रहता है। ऐसे ही हे नचिकेता! विज्ञानी विवेकी मननशील मनुष्य का आत्मा संसार से ऊपर होता है अर्थात् ऐसे ही मननशील बिवेकी पुरुष का संस्कृत आत्मा परम पवित्र शुद्ध परमात्मा में पड़ कर शुद्ध पवित्र हो जाता है।

जिस प्रभु की प्रेरणा वा दिव्य व्यवस्था से यह जीव–यह मनुष्य जो निद्रावस्था का अन्त तथा जागृतावस्था का अन्त अर्थात् सोने के बाद और जागने के बाद की–अर्थात् दोनों अवस्थाओं को देख लेता है। जो प्रभु की व्यवस्था से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोने के बाद जागने पर यह समझ लेता है कि मैं वही हूँ जो सोया था और जागने के अन्त में फिर जब वह सोने जाता है तो यही समझता है कि मैं सोकर पुनः जागने पर यही रहूँगा। इस पर वह सोने जागने–दोनों के अन्त को–छोर को देख लेता है–अनुभव कर लेता है। ऐसे ही उस महान्–पूजनीय कण-कण और क्षण-क्षण में बसने वाले-जर्रे-जर्रे में समाए हुए सर्वान्तर्यामी परमपिता परमात्मा को जानकर धीर-ध्यानी-ज्ञानी बुद्धिमान् मनुष्य फिर शोक नहीं करता। शोक उस को हो भी कैसे क्योंकि वह उस एक प्राणप्रिय प्रभु के आनन्द में मग्न होता है। वह सर्वव्यापक होने से सदैव उसके पास रहता है उसके वियुक्त होने का फिर कोई प्रश्न ही नहीं होता। अब शोक मनुष्य को तब होता है जब उस की प्रिय वस्तु उस से पृथक् की जाए। सो जो प्रियतम है उस का वियुक्त करना सम्भव नहीं। और जो विषय भोग आदि वियुक्त होते हैं तो उनको उसे चाहना ही नहीं है, तो ऐसी स्थिति में फिर उसे शोक कैसे हो सकता है? तभी तो ईशोपनिषद् मे कहा गया है—"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।"

जो साधक इस कर्मफल को भोगने वाले जीवात्मा के अत्यन्त समीप अर्थात् हृद्गुहा में अपने अत्यन्त निकट विराज-मान, भूत वर्तमान और भविष्य के शासक, स्वामी सर्वान्तर्यामी भगवान को जानता है वह फिर न किसी से ईर्ष्या द्वेष करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, न ही घृणा-नफरत करता है, न ही किसी की निन्दा करता है, न किसी का अपकार तिरस्कार करता है। क्योंकि वह निन्दा करे तो किसकी करे? घृणा करे तो किससे करे? तिरस्कार, अपकार करे तो किसका करे? तोड़े फोड़े मारे काटे तो किसको तोड़े फोड़े मारे काटे? क्योंकि हर पुरुष उसी का मन्दिर है, हर मानव ही उसके प्राणप्रिय प्रभु का मन्दिर है। अतः वह कैसे उनको तोड़े-फोड़े मारे-काटे! वरन् वह तो वेद के शब्दों में "पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः" हर पुरुष हर दूसरे पुरुष की चहुँ ओर से रक्षा-सुरक्षा करे, के अनुसार सबकी रक्षा करने लगता है। यही वह आत्मा है-परमात्मा है जो तेरे आत्मा का भी आत्मा अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मा है-तेरी आत्मा का भी जिज्ञास्य है।

सृष्टि उत्पन्न करने में जो तप किया गया-श्रम किया गया, उससे भी पहले भी जो था, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आदि उत्पन्न होने से पूर्व भी जो था, इतना ही नहीं इनके भी कारण गन्धतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा और शब्दतन्मात्रा से भी पहले जो मौजूद था, ऐसे उस सब भूत-प्राणियों की हृद्गुहा में अनुप्रविष्ट हुए हुए, उन सबके साथ सदा सर्वदा सर्वत्र विराजमान रहने वाले भगवान् को जो जानता है, वही आत्मा है-परमात्मा है-सर्वान्तर्यामी परमात्मा है, जो आत्मा का भी आत्मा है-जिज्ञास्य है।

व्याख्या—तृतीय वल्ली के १२वें श्लोक में यह कहा गया है कि वह परमपिता परमेश्वर सब भूतों में समाया हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी-सब प्राणियों में विराजमान रहता हुआ भी सबको नहीं दिखाई देता। किसी विरले सूक्ष्मदर्शी महापुरुष को ही उसकी पैनी दृष्टि से ही वह दिखाई देता है। अब यह विचारणीय है कि जब सब के हृदयों में ही वह समानरूप से बसा हुआ है तो फिर सबको क्यों वह दिखाई नहीं देता? किसी विरले को ही उसके दर्शन क्यों होते हैं-किसी विरले को ही उसका साक्षात्कार क्यों होता है?

कारण यह है कि स्वयम्भू भगवान् ने इन इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है-बाहर की ओर खुलने वालीं बनाया है, इसलिये मनुष्य इन बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा बाहर ही देखता है, भीतर की ओर नहीं, बाहर के विषयों को ही निहारता है-अन्तरात्मा को नहीं-अन्दर विराजमान आत्मा के भी आत्मा परमात्मा को नहीं। उन्हीं बाहर के विषयों में ही वह सदा डूबा हुआ रहता है, भीतर विद्यमान अन्तर्यामी परमपिता परमात्मा की ओर जाने का तो उसे समय ही नहीं मिलता-उसका ध्यान-भंजन करने की तो उसे फुरसत ही नहीं मिलती, इसलिये वह उसको दीखता नहीं-वह उसको अनुभव होता नहीं। पर अमरत्व का-मोक्ष का अभिलाषी कोई विरला ही धीर-ध्यानी ज्ञानी बुद्धिमान् मनुष्य जब अपनी चक्षु-श्रोत्र आदि इन्द्रियों को ज्ञानपूर्वक बन्द करके-बाह्य विषयों से पराङ्मुख करके धारणा ध्यान समाधि द्वारा कछुए की तरह उन्हें समेट कर के भीतर की ओर निहारता है-अन्तर्मुखी वृत्ति से सजग होकर उसका अवलोकन करता है, तो उसे अपने प्राणप्रिय प्रभु का दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य होता है–उसे परब्रह्म परमेश्वर का अनुभव निःसन्देह होता है। अब चूंकि सभी ऐसा प्रयास नहीं करते इसलिये सब के हृदयों में बसते हुए भी सबको उसका अनुभव नहीं हो पाता। अब यदि ऐसे मनुष्य परमेश्वर का दर्शन करना चाहते हैं–प्राण-प्रिय प्रभु का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो उन्हें चाहिये कि वे सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन करें–अपने नियन्त्रण में लाएं, स्वेच्छा से विषयभोगों में उन्हें इधर–उधर भटकने न दें। इस प्रकार जब वे अपनी इन्द्रियों को संयम से रखेंगे–उन्हें बाह्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द रूप विषयों से रोकेंगे, अर्थात् चक्षु, जिह्वा, नासिका, त्वचा, श्रोत्र को विषय वासनाओं में नहीं रमने देंगे, और उस समय मन में वर्तमान तत्सम्बन्धी भावों को भी रोकेंगे। अर्थात् मन में भी उन विषयों का चिन्तन नहीं करेंगे तो इन सब बाह्येन्द्रियों एवं अन्तरिन्द्रिय मन आदि के सब व्यापार भी शनैः शनैः मन्द पड़ते जायेंगे, तब मनुष्य धारणा ध्यान और समाधि द्वारा उस प्रभु का दर्शन पाने में समर्थ हो सकेंगे।

संसार के साधारण भोले–भाले अज्ञानी लोग प्रायः वाह्य विषयों की चमक–दमक और उनके आधार पर मिलने वाले क्षणिक सुखों में आसक्त और प्रसक्त हुए–हुए उन्हीं के पीछे दौड़ते रहते हैं, पर वे उनके हाथ नहीं आते। उनका हाथ आना तो दूर रहा और उल्टे वे ही सर्वदा सर्वत्र चहुं ओर फैले हुए मृत्यु के पञ्जे में जा फंसते हैं। हाँ जो धीर–ध्यानी ज्ञानी जन होते हैं, जो अमरत्त्व के महत्त्व को भली–भाँति जानते हैं,–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नित्य प्रति जो उसकी प्राप्ति के लिये सत्सङ्ग स्वाध्याय संयम और जप तप करते रहते हैं वे फिर इन सांसारिक विषय भोगों के पीछे नहीं भागते–वे इनके योग–क्षेम में जीवन के अमूल्य को बरबाद नहीं करते, वे फिर इनसे मिलने वाले क्षणिक सुखों में आसक्त होकर अपने जीवन की अमूल्य निधि को नहीं खोते। वे तो फिर अपने साध्य के लिये जितने भी न्यून से न्यून साधन हो सकते हैं उतने में ही सन्तोष कर अपने उद्देश्य के प्रति ही सदा सजग रहते हैं। क्योंकि उन्हें भली-भाँति यह ज्ञान हो जाता है कि इन अध्रुव पदार्थों में–इन अस्थिर पदार्थों में–इन क्षणभंगुर पदार्थों में सदा फंसे रहने से–सदा डूबे रहने से वह ध्रुव प्रभु–वह स्थिर ब्रह्म–वह निश्चल प्राण प्यारा दिव्य देव नहीं मिलता। इसलिये वे सदा इस यमाचार्य से प्रोक्त–कही हुई इस आत्म–परमात्म–सम्बन्धी अनुपम अध्यात्म विद्या को जानकर और पूण योग विधि को समझ कर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त हुए–हुए संसार के राग-मोह आदि से सर्वथा रहित हुए–हुए जन्म-मरण के बन्धन से सब प्रकार से छूट कर अमर हो जाते हैं–जन्म-मरण के बन्धन से सब प्रकार से छूट कर परम-पद मोक्ष को पा लेते हैं।

□□□

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्रद्धहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धापूर्वक दा देने वाले भावों के सहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस्तकें

	प्र० सं०	द्वि० सं०	तृ०, च० सं०
१ प्रार्थना सुमग–१	११00	४०००	
२ कौन चैन की नहीं सो सकते औरके उपाय।	२०००	२०००	४००० ४०००
३ वेद सुधा, भाग	२०००	४०००	
४ विदुर जी की दृमें वृद्धिमान् कौन ? १	२०००	४000	४000
५ महान् विदुर के १ उपदेश	२०००		
६. वेद सुधा, भाग–	२०००	४०००	
७ विनय सुमन, भाग	२०००	४०००	
८ प्रार्थना प्रदीप, भाग	२०००	४०००	
९ प्रार्थना प्रसून, भाग–	२०००	४०००	
१० प्रार्थना सुमन, भाग–	२०००	४०००	
११ विनय सुमन, भाग–२	२०००	४०००	
१२ अनन्त की ओर	२०००	४०००	४000
१३ वैदिक पुष्पाञ्जलि, भा १	२०००	२000	
१४ वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग२	२०००		
१५ वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग३	२०००		
१६ वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–	२०००	प्रकाशित होने वाली है	
१७ वैदिक गृहस्थाश्रम(सुखीगृस्थ)	३०००	४०००	४०००
१८ प्रभात वन्दन	३०००	४०००	
१९ शयन विनय	४०००		
२० वेदोपदेश, भाग–१	?०००	३000	
२१ वैदिक रश्मियाँ, भाग-१	?०००		
२२ विनय सुमन, भाग–३	३०००	४०००	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	प्र०	द्वि०	तृ०	च०
२३ विदुर जी दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ? भाग–२	४०००			
२४ वैदिक आदर्श परिवार, भाग-१	४०००			
२५ वैदिक रश्मियाँ, भाग–२	३०००			
२६ (ब्रह्मयज्ञ) वैदिक संध्या	४०००			
२७ वैदिक रश्मियाँ, भाग–३	३०००			
२८ पावमानी "वरदा वेद माता"	४०००			
२९ यम नियम	४०००			
३० जीवन गाथा (माता भागवन्ती जी)	३०००			
३१ ईशोपनिषद्	४०००			
३२ नचिकेता के तीन वर	४०००			
३३ याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद	४०००			
३४ यज्ञ सुधा (पञ्च महायज्ञ)	४०००			

आगे प्रकाशित होने वाली पुस्तकें—

१ अष्टाङ्ग योग
२ ओङ्कार दर्शन
३ वैदिक रश्मियाँ भाग–४
४ वेदोपदेश, भाग–२
५ वेद सुधा भाग–३
६ वैदिक आदर्श परिवार भाग–२
७ जुआ मत खेलो, पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ की कमाई में ही सर्वविध सुख निहित है।

नोट–पुस्तक विक्रेता आदि को "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के लिये ३.४० पै० दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

शर्मा प्रिन्टर्स, पो[illegible] बाजार, ज्[illegible] [illegible] (हरिद्वार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार, वेदरत्न
आचार्य एवं उपकुलपति
गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
जन्म थाना, मलाकण्ड एन्जेंसी
जिला मरदान, फ्रन्टीयर
(वर्तमान पाकिस्तान)
जन्म तिथि -७-१-१९१६
पिता का नाम
श्री गंगा विशन जी

शिक्षा—गवर्नमेंट हाईस्कूल थाना, आदर्श हाईस्कूल चन्दौसी, श्याम सुन्दर मेमोरियल हाईस्कूल चन्दौसी, दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर (जिला अम्बाला), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

उपाधियां—सिद्धान्त भूषण, सिद्धान्त शिरोमणि, (दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर), वेदालंकार, एम०ए० (वैदिक साहित्य) गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

प्रचार-कार्य-उत्तरप्रदेश म०प्र० आन्ध्र प्र०, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र (बम्बई), गुजरात आदि

अध्यापन दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर, गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार। प्रोफेसर एवं अध्यक्ष वेद विभाग, वर्तमान पद-आचार्य एवं उपकुलपति गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

लेखन प्रकाशन—३४ पुस्तकें एवं पत्रिकाओं में शोध लेख आदि।

साहित्य सेवा पर सम्मान एवं पुरस्कार—आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा-संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर।

आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओ के उपलक्ष्य में सम्मानित एवंपुरस्कृत (१९८३), द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति (अजमेर)।

वेदरत्न (मानद उपाधि १९८४) द्वारा विश्ववेद परिषद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar